मधु-सीकर

लेखिका

रमादेवी श्रीवास्तव "रमा"

प्रकाशक

दीक्षित प्रेस, प्रयाग

प्रथम बार] [मूल्य

स्वर्गीय 'निर्मल'

की

स्मृति-समाधि

पर

विषय सूची

"बीते दिन"

"माना कि प्रकाश तुम्हारा एकलौता बेटा है, बहुत ही लाड़ प्यार से पला है, शिक्षित है फिर भी क्या उसे इतनी स्वतंत्रता देनी चाहिए कि जिससे चाहे शादी करे ! शादी ब्याह का मामला हरीश बाबू को तय करना चाहिए था ! पर भाई आजकल की कौन कहे ! फिर बड़े घर की बात ! यदि हमारा विनोद ऐसे विचार का होता तो उसके पिता कभी भी सहन

न करते !" इतने में प्रकाश की मां ने पड़ोसिन को कुछ और अधिक कहने का मौका न दिया और बोल उठी—"अरे बहन ! अब वह ज़माना गया जब तुम्हारे विनोद की शादी हुई थी, आजकल ज़माने की जो रंगत है उसे देखते हुए मैं तो कहती हूँ कि प्रकाश बड़ा ही सुशील है ! उसके पिता का स्वयं विचार है कि जिसको जीवन भर साथ निभाना है उसी की पसन्द से शादी होनी चाहिए—वे कहते हैं कि हम लोगों का जीवन ही कितना है—प्रकाश तो उसके साथ जीवन भर के लिए बाँधा जावेगा फिर ऐसा ब्याह क्यों न हो कि वह सुख से रह सके ! और बहन ठीक भी यही है हम सब लोग केवल लड़की का रूप रंग देख सकते हैं—पर उसका स्वभाव तो नहीं और उस लड़की का स्वभाव प्रकाश अच्छी तरह जानता है ! दोनों में अभी से काफ़ी बनती है, छोटेपन से साथ खेलते आए हैं फिर भला ब्याह हो जाने पर कैसे न सुखी होंगे ।

विनोद की मां को इतनी बातों में कुछ भी सार न मालूम हुआ फिर भी वह चुप ही थी । इतने में हरीश बाबू दफ़्तर से आ गए ! पड़ोसिन उन्हें देख कुछ थोड़ा सा मुँह ढक कर वहां से चल दी । हरीश बाबू ने कपड़े उतारते हुए पूछा "प्रकाश किधर है ?"

"कहीं गया होगा कुछ कह तो गया नहीं।" इतना कह कर प्रकाश की मां कुब्जा के लिए पानी लेने चली गई !

× × ×

किसी ने पीछे से प्रकाश की आँखें ढक ली, प्रकाश ने अपने आँखों पर के हाथों को भली भाँति टटोल कर कहा : "अरे कुमुद तुम इतनी शाम को यहां कैसे ?" इतना कह कर कुमुद का हाथ पकड़ कर अपने सामने कर लिया !

कुमुद ने एक ज़ोर की हँसी हँस कर कहा "और तुम ? अपनी कहो ?"

"मैं तो यहां चाँद का निकलना देख रहा हूँ !"

"मैंने भी तो इस बाग़ में अपने चाँद के निकलने की शुभ सूचना पाई थी !"

प्रकाश हँस पड़े ! कुमुद पास ही घास पर बैठ गई !

"अच्छा कुमुद !" प्रकाश ने कुछ व्यंग में कहा "अब तो चार दिन में तुम्हारी शादी होने वाली है, तुम्हें कुछ शर्म नहीं लगती ?"

"लगती क्यों नहीं, पर उतनी जितनी तुम्हें लगती है !"

"तुमसे तो जीतना कठिन है कुमुद ! हम तो हार गए…!"

'तो फिर यह क्यों नहीं कहते कि हम दोनों एक दूसरे से हार गए !"

"अब यह तुम जानों !" प्रकाश ने कुमुद की पीठ ठोंकते हुए कहा—"हम तो केवल अपनी हार जानते हैं लेकिन कुमुद ! तुमसे हारने ही में तो हमारी जीत है !"

कुमुद ने शर्म से आँखें नीची कर ली। कुछ क्षण तक दोनों मौन रहे फिर प्रकाश ने निस्तब्धता तोड़ी।

"कुमुद, कितनी अच्छी लगती हो तुम। इच्छा नहीं होती कि तुमको छोड़ कर चला जाऊं।"

अच्छा ! यह बात है। तो लो मैं यह चली। तुम भी घर जाओ। कालेज से लौटे हो, थके होगे।

× × ×

प्रकाश का जीवन अब प्रकाशमय है ! कलकत्ते में २५०) रु० वेतन पा रहे हैं ! कुमुद के साथ दाम्पत्य जीवन बिताते लगभग दो वर्ष बीत चुके हैं। उनका जीवन बहुत सुखपूर्ण है। एक शानदार बँगले में रहते हैं, सामने फुलवारी है। कभी कभी दोनों उसी में बैठ कर अपने विवाह के पहले का जीवन याद किया करते हैं, घंटों प्रेमालाप हुआ करता है। कुमुद सदा प्रकाश की सेवा तथा उनको प्रसन्न देखना ही अपना सौभाग्य

समझती है, प्रकाश भी कुमुद का जीवन सुखपूर्ण रखना अपना कर्तव्य मानते हैं! दोनों अपना जीवन एक नए रंग में रँगा पाते हैं!

प्रकाश के यहां के दोस्त रमेश बाबू ही अधिकतर इनके यहां आते जाते हैं। यद्यपि रमेश बाबू में कुछ ऐसी लतें हैं जो कि प्रकाश को बहुत ही नापसन्द हैं फिर भी वह उनके आने जाने में कुछ हर्ज़ नहीं समझते और इस बात का तो उन्हें स्वप्न में भी विचार नहीं है कि एक वह भी दिन होगा जब रमेश उन्हें ले डूबेंगे!

आज भी रमेश प्रकाश के यहां बैठे गप्पे लड़ा रहे हैं।

"क्यों प्रकाश! तुम मदिरा से इतनी घृणा क्यों करते हो?" रमेश ने कुछ मुस्कराते हुए कहा!

"मदिरा से घृणा क्यों करता हूं, तुम भी रमेश खूब पूछते हो, अरे मदिरा कौन सी अच्छी चीज़ है, फिर हमने तो आज तक उसका स्वाद भी न जाना!"

"लेकिन सोसाइटी में मूव करने के लिए तो थोड़ा बहुत सभी बातों में भाग लेना चाहिए न?"

"लेकिन हम तो कभी इस फेर में पड़े नहीं और कुमुद को भी इन लतों से कहना चाहिए कि सख्त नफ़रत है!"

रमेश ने एक ज़ोर की हंसी हंस कर कहा "तो यूं कहिए कि आप कुमुद की इज़ाजत लेकर प्रत्येक काम करते हैं ?"

"नहीं सच बात तो यह है कि हमें स्वयं पसन्द नहीं फिर अगर इज़ाजत की ज़रूरत भी हो तो बेजा क्या ? जब तक किसी भी काम के लिए दोनों की राय एक सी न हो, सच्ची खुशी नहीं मिल पाती है !

"अरे जब तुम शुरू करोगे तो वह खुद ही पीने लगेगीं !

खैर यह तो फिर कभी देखा जायगा कुछ इच्छा तो होती नहीं।" इतना कह कर प्रकाश ने मुड़कर देखा कि कुमुद भी चली आ रही है !

कुमुद को आते देख रमेश ने नमस्ते किया और कहा "कहिए ? अब तक कहां थीं ।"

"यहीं कुछ खाने पीने के प्रबंध में लगी थी।"

"क्यों, आप का नौकर !"

कुमुद ने प्रकाश के बग़ल वाली कुर्सी पर बैठते हुए कहा "नौकरों के साथ भी कुछ न कुछ लगना ही पड़ता है !"

इतने में प्रकाश बोल उठे "देखो कुमुद रमेश मदिरा की प्रसंशा बहुत अधिक करते हैं, कहो तुम्हारा क्या अनुभव है !"

कुमुद ने रमेश की ओर देखकर कुछ हंस कर कहा "मेरा अनुभव क्या ? पर इतना अवश्य कह सकती हूँ कि मदिरा है बहुत बुरी चीज़" !

रमेश को यह बात काफ़ी बुरी लगी कि प्रकाश ने क्यों कुमुद से यह विषय छेड़ दिया—और उसने इस विषय का अधिक बढ़ाव अच्छा न समझ कर प्रकाश से कहा "अच्छा प्रकाश ! चलो कुछ घूम फिर आवें !

"चलो न !"

प्रकाश कोट पहन कर दोस्त के साथ टहलने चल दिए ! कुमुद अपने गृहस्थी के कामों मे व्यस्त हो गई !

× × ×

कुमुद ने प्रकाश को आते देख कर हाथ की उपन्यास चारपाई पर रख दी और उठ कर बैठ गई ! पर जैसे ही उसने एक बार प्रकाश की ओर आँख भर कर देखा उसके रोए झिझक उठे—वह उठ कर पलंग के नीचे खड़ी हो गई और प्रकाश की एक एक बात बड़े ग़ौर से देखने लगी—वह लाल लाल आंखें ! वह भर्राया हुआ चेहरा ! वह डगमगाते हुए क़दम ! यह सब वह क्या देख रही है, वह मन ही मन एक बहुत बड़ी

आशंका में ग्रसित हो गई! प्रकाश ने चारपाई पर बैठते ही कहा "कुमुद! क्या एक गिलास पानी पिलाओगी?"

वह बिना कुछ कहे ही पानी लेने चली गई पर मन ही मन सोचती गई "हो न हो इन्होंने आज मदिरा पान किया है। रमेश उसी दिन चर्चा कर रहा था—कदाचित मेरे विचार से चुप हो गया था!"

प्रकाश ने पूरा गिलास पानी एक सांस में पी लिया और बैठे बैठे ही धड़ाम से चारपाई पर गिर पड़े। कुमुद घबरा उठी! उसने शीघ्र ही प्रकाश के दोनों हाथ अपने हाथ में ले लिए और विनीत भाव से पूछा "तुम्हें आज क्या हुआ है? क्या मदिरा पी है?"

प्रकाश कुछ न बोल सके और एकटक कुमुद की ओर देखते रहे—कुमुद ने फिर एक बार पूछा "बोलते क्यों नहीं! क्या मदिरा पी है?"

प्रकाश ने कुछ गड़गड़ाती हुई आवाज़ में कहा—"हां पी तो है, कुमुद! पर रमेश के अनुरोध से, क्या क्षमा करोगी? बड़ी वेदना हो रही है।"

कुमुद के नेत्र सजल हो उठे! वह बहुत समय तक उसी प्रकार बैठी रही—न जाने किन किन विचारों में व्यस्त थी!

सोचते ही सोचते वह गुस्से से थर्रा उठी। कुछ सोच कर उसी समय जाकर रमेश को एक पत्र लिखा और अपने नौकर के हाथ रमेश के बोर्डिङ्ग में भेजवा दिया। साथ ही नौकर को सचेत भी कर दिया कि प्रकाश को न बताए!

रमेश पत्र के ऊपर किसी का भी नाम न देख कर पहले बहुत चकराया फिर कुछ अपने किए का विचार आया और पत्र खोल कर पढ़ना शुरू किया!

नमस्ते!

दृष्टता तो अवश्य होगी, फिर भी क्षमा की आशा है! मुझे जिस बात का डर था वही हुआ! आपने प्रकाश को वही राह बताई जिस पर आप मिट चुके हैं! मुझे आगे चल कर इससे भी अधिक की चिन्ता है! यदि आप इनका साथ बिलकुल छोड़ दें तो आप की बहुत बड़ी कृपा होगी! किसी के जीवन को मिट्टी में मिलाने से आप का कुछ भी लाभ न होगा वरन् परिणाम कदाचित बुरा हो! अधिक और क्या लिखूं!

'कुमुद'

रमेश ने पत्र पढ़ा और हँस कर जेब में रख लिया! उसे आशा न थी कि कुमुद उसे पत्र लिखेगी। पत्र के विषय में प्रकाश से कभी चर्चा न करना ही उसने अच्छा समझा।

वह कमरे में टहल टहल कर सोचने लगा— हां, प्रकाश के ऐसे सीधे सादे को चट्टे पर चढ़ाना क्या कठिन ! जिस जिस बातों से कुमुद नफरत करती है सभी प्रकाश को सिखाऊंगा देखें तो कुमुद क्या करती है ? सुखी दाम्पत्य जीवन का कुमुद और प्रकाश को बड़ा अभिमान है ! मुझे कुमुद एक बुरी चलन का पुरुष कहती है, देख लूंगा प्रकाश भी कब तक एक अच्छे आचरण वाला बना रह कर कुमुद को खुश रख सकेगा ! मैंने भी यदि कुमुद का अभिमान तोड़ न दिया तो क्या !

× × ×

प्रकाश ने आंख खोल कर देखा अब भी कुमुद उसी तरह बैठी है ! घड़ी की ओर आंख फेरी, दो बज रहे थे ! अब वह पूरी तौर से सचेत था ! कुमुद से आग्रह के साथ कहा "अब तुम आराम करो हम बिलकुल ठीक हैं !"

"आराम ! आराम के दिन कदाचित अब जाने वाले हैं !

"ऐसा न कहो कुमुद !"

"परिस्थित कहला रही है !"

प्रकाश के हाथ में दो गर्म बूंदे गिरी ! प्रकाश समझ गया कि कुमुद पर आज आघात हुआ है ! वह कुछ आगे बोल न सका ! नहीं मालूम कब तक अपने किए पर पश्चात्ताप करता

रहा। मन में सोच रहा था अब कभी ऐसी भूल न करूँगा पर भविष्य कुछ और ही कह रहा था !

× × ×

"यह किसका घर है रमेश" प्रकाश ने कुछ आश्चर्य युक्त शब्दों में पूछा !

"आओ भी यहां खुद ही पता चल जायगा किसका घर है ! देखो, यह घर नहीं है चित बहलाने का एक.........!"

प्रकाश कुछ ठिठुक गया ! रमेश ने प्रकाश का हाथ पकड़ कर खींचते हुए कहा—"तुम भी प्रकाश कैसे हो ! ज़रा ज़रा सी बात पर हिचक लगती है। मदिरा से कितनी नफ़रत थी। पर अब तो जनाब......!" प्रकाश नशे में तो था ही ; जिधर ही बहका दो !

प्रकाश यहां की प्रत्येक वस्तु को बड़े ग़ौर से देख कर सोचने लगा—'कमरा कितना मनोरंजक वस्तुओं से सजा है ! कैसे ठाट बाट !! और वह रमणी ! उसे यह लावण्य कहां मिला ? क्या किसी दैव का दिया हुआ उपहार है अथवा किसी पुण्य का वरदान है ! इसके आव भाव कितने चित्ताकर्षक हैं ! रमेश यहां आकर सुखी होता होगा ! बस इसी लिए उसने शादी नहीं की। अब मैं समझ गया ! हमारी कुमुद में तो कभी

यह भाव न आए—उसने तो कभी यह ठाट बाट न किए।'
प्रकाश बैठा हुआ यही सब सोच रहा था कि रमेश के इशारे से बसन्ती (वेश्या) ने एक मन्द मुस्कान के साथ प्रकाश का हाथ पकड़ते हुए कहा—"हम आपने भाग्य की सराहना कहां तक करें कि आज आप के दर्शन तो हुए! रमेश बाबू से आप की बहुत तारीफ़ सुन चुकी हूं"!

प्रकाश बसन्ती से स्पर्श होते ही कुछ हिल गए—मानों आत्मा एक बार फिर पुकार कर कह रही हो कि यह अन्याय है! उसके मस्तिष्क में कुछ समय तक यही संग्राम छिड़ा रहा—लेकिन ऐसे स्थान पर बैठे हुए जिसकी जीत हो सकती थी उसी की हुई! कुछ समय बाद रमेश ने प्रकाश की ओर बढ़ कर कान में कहा "इसे कुछ देते चलो, तुम्हें काफ़ी बड़ा आदमी समझती है।"

प्रकाश के पास उस समय था ही क्या, हाथ की एक अंगूठी बची थी जिसे वह देना नहीं चाहता था—पर रमेश के अनुरोध को वह टालता भी तो कैसे?

× × ×

कुमुद को इसका शोक नहीं कि प्रकाश अब छः महीने से नौकरी चाकरी पर लात मारे बैठा है, उसे इसका दुख नहीं कि उसके सारे जेवर गहनों पर से उसका अधिकार हट कर

एक वेश्या का अधिकार हुआ है। उसे इसकी चिन्ता नहीं कि अब वह एक असहाय अबला की भांति घर में चार चार दिन उपासी पड़ी रहती है। प्रकाश के अब दो दो दिन तक ग़ायब रहने के बाद घर आने पर उससे एक क्षण बैठ कर प्रेमालाप करने के स्थान पर कुछ द्रव्य न पाने पर गाली गुसारी देना भी उसे सहन है, पर उसका हृदय फटता है केवल यह देख कर कि प्रकाश का स्वास्थ्य मदिरा के हाथ किस प्रकार बिका जा रहा है ! वह दिन प्रति दिन कितने क्षीण होते जा रहें हैं, इन्हीं सब विचारों में दुखी होकर वह प्रतिक्षण आंसू बहाया करती है !

आज भी सुबह से पड़ी रो रही है ! एक बार आंख खोल कर अपने उजड़े हुए घर की ओर देख लेती है और फिर आंख बन्द कर के अपने भाग्य को ठोंकती है !

वह इसी विचारमग्न अवस्था में थी कि उसे जान पड़ा। कि कोई उसकी चारपाई पर आकर बैठ गया है ! उसने घबड़ा कर आंख खोली, देखा, प्रकाश थे। चार दिन बाद पति का दर्शन पाकर उसका मलिन मुख खिल उठा पर ज्यों ही उसने प्रकाश की आंखों का रंग देखा, सहम उठी। उसके नेत्र सजल हो उठे। वह सोचने लगी, इस समय मदिरा का नशा है किसी न किसी वस्तु की मांग मुझसे अवश्य होगी। भला मैं उन्हें इस

समय क्या देकर प्रसन्न करूगी। कुमुद का यही धैर्य्य था कि जिस प्रकार भी हो सके वह प्रकाश की इच्छा पूरी करे पर आज उसे कोई भी मार्ग प्रकाश को सन्तुष्ट करने का नहीं दिखाई पड़ा। घर में एक पैसा भी न था, घर का धन धीरे धीरे बसन्ती के घर पहुंच चुका था, अब वह प्रकाश को क्या देगी ! एक बार फिर उसने अपने को सर से पैर तक देखा, केवल हाथ में एक अंगूठी देख पड़ी जिस पर प्रकाश का नाम था। वह बड़ी देर तक सोचती रही, इस अंगूठी को कैसे दे सकूंगी ! यह अंगूठी प्रकाश ने कुमुद को भेट दी थी, प्रकाश की अनुपस्थिति में वही उसे कुछ शान्त पहुंचाती है ! वही उसके बीते दिनों की याद दिलाती है। उसने निश्चय कर लिया कि जीवन रहते हुए इस अंगूठी को एक कलुषित हाथों में न जाने देगी !

बहुत समय तक कुमुद को चुपचाप मूर्ति की भांति खड़ी देख कर प्रकाश ने एक ज़ोर की आवाज़ में कहा "क्या सोच रही हो !"

कुमुद चौंक पड़ी और प्रकाश के पैर पकड़ कर कहा "कुछ तो नहीं" !

प्रकाश ने और भी ज़ोर पकड़ कर कहा "हम क्यों आएं हैं, तुम्हें मालूम हुआ !"

"कदाचित इस अभागनी को दर्शन देने !" कुमुद ने रोते हुए कहा।

प्रकाश ने एक ज़ोर का झिटका देकर उसे अपने पैरों के पास से हटा दिया और कहा "मैं तुम्हारी चापलूसी नहीं सुनना चाहता, जो कुछ भी तुम्हारे पास हो हवाले करो।" इतने ही में उसकी नज़र कुमुद के हाथ की अंगूठी पर पड़ी। उसने रोष भरी आंखों से अगूंठी की ओर संकेत कर के कहा "इसे फ़ौरन उतार दो।"

कुमुद एक बार फिर प्रकाश के चरणों पर गिर पड़ी और कहा "जीवन धन ! इसे तुमने कब दी थी ; याद करो, बस, केवल उसी नाते छोड़ दो, इसे देख कर......!"

कुमुद कुछ अधिक कह भी न पाई थी कि प्रकाश ने झिटके के साथ उसे उठाकर खड़ा किया और उसके हाथ की अंगूठी उतारने लगा। कुमुद फूट फूट कर रो रही थी परन्तु प्रकाश उसी तरह अपने काम में व्यस्त था। वह अंगूठी कुमुद की उंगली में इतनी कसी थी कि उतर न सकी। अन्त में प्रकाश हताश होकर उसे धक्का दे कर चला गया और जाते समय कह गया "अब तेरा मुख कभी न देखूंगा।"

× × ×

"क्यों प्रकाश बाबू, आज कई दिनों बाद कृपा हुई, और रमेश बाबू कहां रह गए ?" बसन्ती ने मुसकराते हुए कहा।

प्रकाश ने कुछ अनमनस्यक भाव से वहीं पर बैठते हुए कहा "उस दिन रमेश जब से यहां से गए हैं तभी से ज्वर से पीड़ित हैं, खांसी के कारण रात भर सो नहीं पाते, उन्हीं की सेवा सुश्रूषा में हमें भी अवकाश न मिला। कल बनारस से इत्तफ़ाक़ से उनके बड़े भाई आ गए हैं जिससे हमें कुछ इतमिनान हुआ, तभी चला भी आया!"

बसन्ती कुछ सहानुभूति प्रगट करती हुई बोली "ईश्वर उन्हें जल्द सेहत दे, बड़े नेक आदमी हैं!"

"हां तुम्हीं लोगों की दुआ है वरना हालत तो अच्छी नहीं है!"

बसन्ती ने उस दिन प्रकाश का कुछ अच्छी तरह आवभगत न किया—उसी दिन क्या, प्रकाश इधर कई दफ़े से यही देख रहा था कि बसन्ती उसका वह आदर भाव नहीं करती जैसा कि पहले किया करती थी, इससे प्रकाश कभी कभी खिन्न भी हो उठते थे। बसन्ती के नज़रों से प्रकाश के गिरने का यही मूल कारण था कि प्रकाश अपना सारा धन बसन्ती को अर्पण कर चुका था और अब उसके पास एक पैसा भी न था जो बसन्ती को अपनी ओर

और अधिक खींचता। जब कि बसन्ती ही उनसे खिंची सी रहती थी तो प्रकाश का मन कहां तक उसके पास बहल सकता था, वह आज भी उदास हो कर वहाँ से चला आया !

× × ×

"तो क्या अब आप अधिक न ठहरिएगा ?" प्रकाश ने पूछा ।

नहीं" रमेश के भाई जय कुमार ने लापरवाही से उत्तर दिया।

लेकिन आपके भाई तो इस क़दर बीमार हैं सो ?"

इस बार जय कुमार ने अपना विस्तर संभालते हुए कुछ होश में आकर कहना शुरु किया।

"हमारा भाई ? शायद इसे सुनकर भी हमें वेदना होती है। वह हमारा भाई नहीं हमारा दुशमन है, हमारे कुल का दाग़ है, उसकी हकतें हमें अगर इस हद तक मालूम होती तो हम आज चार वर्ष बाद उसकी सूरत देखने की इच्छा न करते वरन् यह भी जानने की इच्छा न करते कि रमेश ज़िन्दा है या नहीं ! घर की सारी सम्पति उसने एक ऐसे के चरणों में चढ़ाया जिसके बराबर धोखे वाज़ संसार का नीच से नीच प्राणी भी नहीं होता ! हां वही वेश्या, जिसके समान कोई भी अपवित्र और पतिता

नहीं। वही जिसके पास हृदय नहीं होता, धर्म और इमान नहीं होता बल्कि होता है केवल मृगतृष्णा में भटकाने वाला रूप, दिखलाया, अविश्वास, धोखा, दग़ा, जाल, और फ़रेब ! उसी के घर दुष्ट रमेश कुत्ते की तरह दौड़ दौड़ कर जाता है !"

प्रकाश एक टेबिल के सहारे खड़े हुआ मूर्ति की भांति सब सुनता रहा; उसके हाथ की सिगरेट व्यर्थ में जल रही थी पर इस समय उसे उसका ध्यान न था; जयकुमार बिस्तर को किनारे रख कर अपने जूते झाड़ने लगे और थर्राते हुए बदन और कँपती हुई आवाज़ के साथ अपने दिल के गुबार निकालते रहे।

"रमेश नहीं जानता कि वही बसन्ती (प्रकाश की ओर देखते हुए) एक दिन उसे किस तरह ठुकराएगी ! अपने कर्मों से वह घर भर की नज़रों से गिर गया; उसकी स्त्री नहीं है वरना आज के दिन वह भी, गली गली टुकड़े माँगती।"

जय कुमार ने प्रकाश की ओर फिर व्यंग दृष्टि से देखा ! पर प्रकाश इसका कुछ अर्थ न समझ सका ! जय कुमार फिर कहने लगे—"उस दुष्ट रमेश ने अपनी सारी तन्दुरुस्ती मदिरा के हाथों बेच डाली, फिर इस दशा में न पड़ेगा तो होगा क्या ? अच्छा है, जितनी शीघ्र वह इस संसार से चला जाय अच्छा है, ऐसे कलुषित और पापियों का यहां काम

ही क्या ! उसके लिए रोने वाला ही कौन है ? वह बसन्ती भी तो एक बार अपना मुख मलीन न करेगी जिसके पीछे वह दीवाना है, क्योंकि वेश्याओं का यह काम नहीं कि वह किसी के लिए अपने दिल में कुछ जगह रक्खें ! उनका तो केवल ऐसे ऐसे कुत्तों को ललकार कर फिर ठुकरा देना है. वह केवल धन की भूखी होती हैं जब तक मनुष्य के पास धन है व॰ उसका आदर कर सकती है, पर दिल से वह भी नहीं !"

जय कुमार के चले जाने के बाद भी प्रकाश बहुत समय तक उसी टेबिल के सहारे खड़ा रहा । उसे जयकुमार का अन्तिम वाक्य बराबर याद आता रहा "वेश्या केवल धन की भूखी होती हैं !" यही वह बार बार दुहराता रहा ! वह सोचता रहा 'अब मे॰ पास धन नहीं रहा इसी लिए बसन्ती मुझसे अब खिंचा सी रहती है !' मेरा वहां बैठना उसे खल जाता है प॰ रमेश को वह अब भी बहुत पूछती है क्योंकि उसके पास अब भा काफ़ी धन है ! प्रकाश को अब जयकुमार की बात अक्षर : सत्य मालूम हुई । वह एक उलझन के साथ कमरे में टहलने लगा । उसे अब आज अपनी कुमुद की भी याद आई । उसने सोचा "हम एक बार अँगूठी न पाने पर कुमुद को ढकेल कर चले आए थे ! उसे हुए

तो अब तीन महीने हो गए! पता नहीं वह अब इस संसार में है, या नहीं।" प्रकाश की आँखों में आँसू आ गए। वह फिर सोचने लगा "कुमुद ने मेरे लिए कितना त्याग किया, क्या संसार का कोई भी प्राणी कर सकता था; उसने सदा हमें प्रसन्न रखने की चेष्टा की और हम········! उसको मदिरा से घृणा थी हमने पान किया, उसने मना भी किया तो सदा हाथ जोड़ कर प्रार्थना के रूप में! वह समझती थी कि मदिरा में हमारी क्षति है पर हम न समझ सके! उसने सदा मेरा कल्याण चाहा पर हमने अपने को मिटा दिया! उसी कुमुद को जो हमें देख कर जीती थी हमने इस भाँति ठुकराया! जिस कुमुद को हम कभी अनेकों सुख पहुंचाने पर भी सन्तुष्ट नहीं होते थे उसी को हमने इस दशा को पहुँचाया। पता नहीं अब कुमुद किस दशा में और कहां है? हम अब उस पवित्र आत्मा के दर्शन पा सकेंगे या नहीं! नहीं नहीं हम अब सन्मुख जाने का साहस नहीं रखते! उस पवित्र मूर्ति के सन्मुख अब हमारा पहुंचना दुर्लभ है! हम उसे अब क्या मुँह दिखा सकते हैं, हम अनेक बार उसका चरण स्पर्श करने पर भी शान्त न पा सकेंगे, और क्या वह हमें क्षमा भी कर देगी? विश्वास तो नहीं।"

प्रकाश घन्टों इसी विचार में उलझा रहा। अब वह रमेश की शक्ल भी नहीं देखना चाहता था, उसकी याद आते ही हृदय में एक जलन होती थी जो असह्य प्रतीत होती थी। आज उसे अपनी भूल......! उसने निश्चय कर लिया कि या तो वह कुमुद के चरणों पर गिर कर अपने अपराधों की क्षमा मांगेगा या फिर गंगा की पवित्र धार में ही अपने कलंक को धोएगा।

× × ×

खिड़की के पास वाली पटरी पर प्रकाश खिड़की से टेक लगाए आंख बन्द किए बैठा था! स्टेशन पर स्टेशन निकलते जाते थे, गाड़ी रुकती थी और फिर चलती थी, पर प्रकाश के विचारों में बाधा नहीं डालती थी! वह सोचता जाता था, हम कुमुद का पता न लगा सके, वह कदाचित मुझसे रुठ कर इस संसार से चली गई। कोई हर्ज नहीं मैं गंगा में अपने प्राणों को पवित्र करके उसके सन्मुख आ जाऊंगा, उसके चरणों में गिर कर क्षमा की भिक्षा मागुंगा ठीक उसी प्रकार जिस प्रकार कभी वह मुझसे अंगूठी के लिए......! वह मुझे क्षमा कर देगी मुझे पूरा विश्वास है, पर अपने कर्मों पर नहीं, उसकी उदारता पर! यही सब सोच रहा था कि गाड़ी ने ज़ोर का धक्का दिया, इस बार उसकी आंख खुल गई।

सामने देखा एक बड़े से पत्थर पर "अजगैन" लिखा है। मिनटों में तमाम यात्री जमा हो गए। जिस डिब्बे में प्रकाश बैठे थे उसमें भी एक हलचल मच गई! कोई इधर से कहता "अरे भाई हमें उतर जाने दो तब बैठो," कोई उधर से चिल्लाता "भइया बच्चे को बचाओ सिर्फ़ तुम्हीं तो उतरोगे नहीं, सभी उतरेंगे," कोई खिड़कियों के अन्दर से ही अपना सामान पहुंचा रहा है। इस कौतूहल ने प्रकाश का विचार भग कर दिया। बड़ी देर तक वह यह सब करश्में देखता रहा। सामने की ओर तमाम खुंचे वाले लोगों के कान के पर्दे फाड़ रहे थे! सहसा प्रकाश की नज़र एक ओर गई। देखा एक भिखारिण वहां मैले-कुचैले, फटे-पुराने वस्त्र में खड़ी है। उसके पास ही एक नेक औरत अपने रुमाल से पैसे खोल रही है, ऐसा मालूम होता है कि उसी को देने जाती हो। भिखारिण के हाथ अन्य भिखारिणी की तरह फैले नहीं हैं वह बड़ी गम्भीर और शान्त मालूम होती है। प्रकाश ने मन ही मन कहा, इसकी सूरत, गम्भीरता और शान्तता तो मानों कुमुद से मिलती जुलती है, पर वह यह न सोच सका कि उसकी कुमुद इस दशा में होगी। फिर भी उसे उस भिखारिणी के साथ काफ़ी सहानुभूति हो रही थी, कदाचित इस लिए कि वह कुमुद के आकृत की थी।

इतने में ही प्रकाश के मस्तिष्क में जय कुमार का वह वाक्य ठनका "रमेश की पत्नी नहीं है वरना आज के दिन वह भी गली गली ठोकरें खाती"। वह सोचने लगा जय कुमार ने इतना कह कर क्यों मेरी ओर व्यंग्र भाव से देखा था ? हो न हो यह कुमुद ही है ! इतना सोचते ही प्रकाश की आंखे सजल हो उठीं, उसने फ़ौरन ही गाड़ी से उतर कर उस भिखारिणी से मिलना चाहा पर गाड़ी चल दी ! वह एक-टक भिखारिणी की ओर देखता रहा। धीरे धीरे भिखारिणी प्रकाश की आखों से ओझल हो गई ! प्रकाश को अब गंगा की शरण भूल गई और कुमुद के चरण स्पर्ष की इच्छा जागृति हो उठी। उसका एक एक क्षण युग के समान बीतने लगा। वह उसी गाड़ी में टहलता रहा। कुछ देर बाद जब दूसरा स्टेशन आया तो वहां उतर कर 'अजगैन' स्टेशन की ओर पैदल लौट पड़ा। उसने सोचा पैदल चलेंगे तो रास्ते में कुमुद कहीं न कहीं अवश्य मिलेगी। एक बार वह फिर सोचने लगा कि "पता नहीं वह मुझे क्षमा कर देगी या उसी प्रकार ठुकरा देगी, जैसे की हमने कभी..... !"

× × ×

संध्या का समय है, वायु मन्द मन्द बह रही है, पक्षी-

गण एक दूसरे से मिल कर चहक रहे थे, सूर्य्य देव अपने दिन भर के परिश्रम के पश्चात्त विश्राम लेने जा रहे थे ! इधर भिखारिणी भी दिन भर भिक्षा मांगने के बाद एक वृक्ष के नीचे बैठ कर कुछ भोजन करने के विचार से एकान्त स्थान ढूंढ़ने के लिए इन वृक्षों के झुंड के बीच बढ़ती चली आ रही थी। वह उन भिखारिणों में न थी कि जिससे जो पाती हाथ फैला कर मांग लेती, जहां पाती बैठ कर खा लेती। वह दिन भर चुपचाप घूमा करती थी, जिसे तरस आता था कुछ दे देता था जिसकी सहायता से वह अपना पेट पालती थी। इस समय भी वह गम्भीर भाव से धीरे धीरे इस ओर बढ़तो चली आती है। बाल बिखरे हुए हैं जिससे उसकी सुन्दरता और अधिक बढ़ रही है ! यद्यपि उसकी सब दशाएं हो चुकी हैं फिर भी उसके मुंह की कान्त नहीं खोई है। कधे पर फटे हुए कपड़े में एक पुटकी सी बंधी है कदाचित उसी में उसके खाने का कुछ सामान है ! वह न जाने किस विचार में डूबी हुई गम्भीर मुद्रा धारण किए बढ़ती चली आ रही है, सहसा उसकी दृष्टि कुछ दूरी पर जा अटकी। देखा एक गिरे हुए वृक्ष के तने पर कोई चुपचाप बैठा है ! बदन पर एक सफ़ेद किन्तु फटा हुआ कुर्ता और धोती है, सर के बाल

हवा में उलझ रहें हैं, पैरों में धूल भरी हुई है। भिखारिणी वहीं खड़ी हो कर सोचने लगी। "यह कौन है, किस दुःख का मारा है और किस विचार में इस प्रकार लीन है!" फिर उसने मन को समझाया "कोई भी होगा यह तो संसार है सभी ग़रीब दुखी इसी प्रकार भटका करते हैं।" यह सोचते हुए एक वृक्ष के नीचे बैठ कर उसने कुछ खाना चाहा, किन्तु खा न सकी! उसका हृदय एक नवीन भांति से धड़कने लगा, उसे एक भारी शंका हुई, साथ ही प्रकाश की भी याद आई। वह उठकर खड़ी हो गई और एक टकवृक्ष के तने पर बैठे हुए पुरुष को देखने लगी। भिखारिणी पुरुष का मुँह नहीं देख सकती थी क्यों कि वह पिछौड़ा आंख बन्द किए बैठा था, फिर भी उसे ऐसा भास होता था मानों कोई कह रहा हो "यह प्रकाश तो नहीं है!" वह तत्क्षण फिर सोचने लगती "नहीं, हमारा प्रकाश इस दशा में कभी न होगा!" बड़ी देर तक वह इसी उलझन में पड़ी रही और अन्त में उसी पुरुष की ओर धीरे धीरे बढ़ती गई। ज्यों ज्यों वह उसके निकट आती थी उसे विश्वास होता जाता था कि वह प्रकाश ही है! और ज्यों ज्यों विश्वास दृढ़ होता जाता था उसके अश्रु सावन भादों की झड़ी लगा रहे थे! उसे प्रकाश को इस दशा में देख कर असह्य पीड़ा हो रही थी! भिखारिणी बहुत

कुछ निकट पहुँच गई थी इतने ही में प्रकाश की आँखे खुल गई। वह कुछ क्षण तक तो सोचता रहा कि वह स्वप्न देख रहा है पर ज्योंही भ्रम दूर हुआ वह दौड़ कर आती हुई भिखारिणी के चरणों पर गिर पड़ा और फूट फूट कर रोने लगा। भिखारिणी ने प्रकाश के दोनों हाथ पकड़ लिए! उसके अश्रु भी उसके अधिकार के बाहर हो गए। भिखारिणी ने प्रकाश को उठाते हुए कहा "जीवन धन!" प्रकाश ने भिखारिणी की ओर देख कर कहा "कुमुद।" कुमुद ने प्रकाश के मुँह से फिर वही प्रेम पूर्ण स्वर में अपना नाम सुनकर प्रकाश के चरणों की धूल अपने मस्तक से लगा ली और अपने खूंट में बंधी हुई अंगूठी को निकाल कर प्रकाश के हांथ में देदी! प्रकाश सजल नेत्रों से उस अंगूठी को एकटक देखते रहे। कुमुद ने अपने दोनों हाथ प्रकाश के कंधे पर रख कर कहा अब क्या सोच रहे हो। प्रकाश ने कुमुद का हाथ अपने कम्पित अधरों तक ले जा कर कहा "बीते दिन"; इतना सुनते ही कुमुद ने अपना मुँह प्रकाश के वक्षस्थल में छिपा लिया!

"नई माँ"

बचपन काल की अवस्था भी कितनी भोली और मृदुल होती है। उस अज्ञानता में, उस सरलता में भी कैसी चंचलता भरी होती है, उस अवस्था का विचार सागर कितना अस्थिर होता है, क्षण भर में महान शोक की लहर और क्षण भर में अपार हर्ष की तरंगें! एक बात पर एक क्षण खिलखिला कर हँसना तो दूसरे ही क्षण उस पर अश्रु प्रवाह, विधाता ने मानों संसार के इस अटूट क्रम का पूरा रूप केवल बालक के सरल हृदय में ही दर्शा दिया। एक अबोध बालक की बाल्यावस्था का नाटक देख कर ही मनुष्य इस माया के बीच अपने जीवन का इतिहास पढ़ सकता है।

आज जीवन के हृदय की गति को कोई ग़ौर से तो देखे! आज उस पाँच वर्षीय बालक के पिता का पुनर्विवाह है। घर पर मेहमानों की भीड़ है; द्वार पर कई जोड़ी बाजे बज रहे हैं! और बच्चों के साथ साथ जीवन भी दौड़ दौड़ कर द्वार पर जाता है और इस धूम को देख कर खुशी के मारे उछल पड़ता है।

कहीं बाजों के साथ साथ ताली बजाने लगता है। कहीं "बाबू की शादी है, नई माँ आवेंगी" की पुकार से घर गूंज देता है, परन्तु उसी क्षण चुप होकर आँखें भी सजल कर लेता है, और अन्य बच्चों से कह उठता है "चाची कहती थी, तुम्हारी नई माँ तुम्हें पीटेंगी" और एक बार बाबू ने भी कहा था "तुम शरारत करते हो नई मां मिठाई नहीं देंगी।" और बच्चे भी इसकी बातें सुनकर चुप हो जाते फिर कुछ देर बाद सब खेलने लगते।

इस बार जीवन के पिता की भी नज़र पड़ गई। उन्होंने देखा कि जीवन एक कोने में खड़ा अश्रु प्रवाहित कर रहा है और सब बच्चे चारों ओर से उसे घेरे भयभीत से हो रहे हैं; त्रिलोकी नाथ को क्या मालूम था कि उनका वह इतना लाड़-प्यार से पाला हुआ बिन मां का जीवन अपने नन्हें से हृदय में कौन सा सन्देश छिपाए है। वह यह अवश्य जानते थे कि उसे अभी माताहीन हुए केवल छै ही महीने हुए हैं! वह जानते थे कि वह अभी बच्चा है, नई मां को पाकर सब कुछ भूल जायगा पर इसका उन्हें ध्यान भी न था कि आज जीवन एक भारी आशंका से ग्रसित है। उन्होंने यही समझा कि कहीं चोट लग गई होगी इसी से रो रहा है। बढ़कर उसे गोद में उठाकर

यही प्रश्न किया "क्या हुआ, कहीं गिर पड़े हो?" जीवन उनके गले में लिपट कर और भी सिसक सिसक कर रोने लगा। लड़कों के झुंड में से सहसा एक ने कह सुनाया "मामा यह कहते हैं कि नई मां आकर हमें बहुत पीटेंगी।" त्रिलोकी को यह वाक्य वाण ही सा प्रतीत हुआ। उन्होंने एक बार जीवन का मुख चूम लिया और फिर उसे लिए हुए अपने कमरे चले गए। त्रिलोकी ने चारपाई पर बैठ कर जीवन को अपने गोद में बिठाल लिया और सर पर हाथ फेरते हुए कहा "जीवन! तुम क्यों रोते हो तुम्हारी मां तुम्हें बहुत प्यार करेंगी।" उसने इस बार अपने कोमल हाथों से त्रिलोकी की कमर को बाँध लिया और रो रो कर कहने लगा "नहीं बाबू! नई मां को मत लाओ, वह ज़रूर पीटेंगी। बाजा वाले से कह दो बाजा न बजाए नहीं तो नई मां आ जायँगी।"

जीवन का एक एक शब्द त्रिलोकी के सीने से पार हुआ। उन्हें स्मरण हो आया कि उन्होंने भी एक बार खेलाते ही खेलाते कहा था—"तुम बड़े शरीर हो तुम्हें नई मां मिठाई नहीं देंगी।" आज उन्हें बहुत ही पश्चात्ताप हो रहा था कि उन्होंने इस अबोध बालक के साथ यह मर्मभेदी हँसी क्यों की थी। उन्हें क्या मालूम था कि यह एक छोटा सा

वाक्य उस बच्चे के हृदय में अटल स्थान कर लेगा। वह जीवन की बातों को अधिक न सुन सके और स्वयं भी फूट पड़े। उन्हें रोता देख जीवन स्वयं तो चुप हो गया और उनके मुख पर हाथ रख कर पूछने लगा "क्यों बाबू! तुम क्यों रोते हो क्या तुम्हें भी नई मां पीटेंगी?" त्रिलोकी की उस दशा में भी जीवन के भोलेपन ने अपना काम किया। वह करीब डेढ़ घन्टे तक समझा कर जीवन के विचार हटा पाए और स्वयं भी शान्त होकर बाहर निकल आए। जीवन फिर अपने खेल में लग गया!

× × ×

विमला जीवन को अपने घर का एक अमूल्य रत्न समझती है। वह जीवन के प्रत्येक कार्य्य को बड़े उत्साह से पूरा करती है। नहीं मालूम क्यों उसे जीवन से उतना ही प्रेम है जितना कि उसकी पहली मां उसे कर सकती थी। उसे जीवन को एक बार भी अपने गोद में बिठाल कर एक अनोखे सुख का अनुभव होता है। वह दिन भर उसकी क्रीड़ा को देख देख कर कितनी खुश होती है। जीवन का मलीन मुख देख कर उसे पीड़ा होती है, और एक बार हँसता देख कर सच्चा सुख पाती है। वह नित्य उसे सुन्दर वस्त्रों से सजाया करती है और उसकी शोभा देख

देख कर मगन रहती है। वह बालक है भी वैसा ही! उसे देख कर पास पड़ोस के लोग प्रसन्न हो जाते हैं फिर भला विमला को तो उसकी मां बनने का सौभाग्य मिला है। और आठ महीने इस उपाधि को पाए हुए बीत चुके हैं फिर उसके हृदय में जीवन के प्रति एक अनूठा प्रेम क्यों न हो!

जीवन के लिए भी यदि संसार में कोई वस्तु अधिक प्रिय है तो उसकी 'नई मां'। वह अधिक देर तक अपनी नई मां को न देख पाने पर विकल हो उठता है। उन्हीं के साथ खाना, पीना, सोना, और प्रति क्षण उन्हीं के सामने खेलते रहना उसका काम है। यह विमला के ही हृदय के गुण हैं जिसने जीवन के पूर्वत् विचारों को इस प्रकार ढक दिया कि चेष्टा करने पर भी जीवन अपनी उन बातों को नहीं सोच सकता है। त्रिलोकी की भी उसे अब उतनी परवाह नहीं जितनी कि 'नई मां' की। त्रिलोकी को अपनी इस शादी से जो शंका थी जाती रही और उन्हें अब काफ़ी सुख और सन्तोष है, विशेष कर जीवन को इस प्रकार सुखी देख कर।

× × ×

जीवन हाथ में एक गुलाब का फूल लिए दौड़ता हुआ आया और सीधे अपने कमरे में जाकर विमला की गोद में बैठ

गया, और फूल को विमला के हाथ में देते हुए कहा ' नई मां, देखो यह फूल कैसा अच्छा है !"

विमला ने फूल को जीवन के गाल पर फेरते हुए कहा "क्या यह फूल तुमसे अच्छा है ?"

"हां यह तो लाल लाल है, हम तो लाल नहीं हैं !"

"देखो यह गाल भी तो कितने लाल हैं !" इतना कहकर विमला ने जीवन का मुख चूम लिया ! किसी के ज़ोर से हँसने की आवाज़ आई ! विमला ने देखा त्रिलोकी भी हाथ में एक फूल लिए चले आ रहे हैं। जीवन ने त्रिलोकी के हाथ से दूसरा फूल भी छीन लिया और अपनी मां को पकड़ा दिया ! त्रिलोकी ने जीवन के एक प्यार की चपत लगाते हुए कहा "क्यों जीवन, नई मां पीटती नहीं ?"

"नहीं, नई मां हमें प्यार करती हैं !"

"अब हम कह देंगे तब तुम्हें खूब पीटेंगी !"

"नहीं नहीं, वह तुम्हारा कहना नहीं मानेंगी !" इतना कह कर वह विमला के गले से लिपट कर कहने लगा। "क्यों नई मां ! क्या तुम पीटोगी ?"

"नहीं ! कभी नहीं ! मैं अपने जीवन को कैसे पीटूँगी !"

यह कह कर विमला ने जीवन को अपने गोद में कर

लिया ! इतने ही में किसी ने बाहर से आवाज़ दी ! त्रिलोकी ने जीवन का हाथ पकड़ कर कहा "चलो तुम्हें बाज़ार घुमा लावें !"

"नई मां भी तो बाज़ार चलेंगी !"

विमला और त्रिलोकी दोनों ही जीवन की सरलता पर हँस पड़े !

× × ×

संसार की गति कितनी तीव्र है ! सुबह और शाम होते होते महीनों और सालों बीत गए ! समय के साथ मनुष्य की परिस्थितियों में भी अन्तर आता जाता है ! जीवन के जीवन में भी कितना अन्तर हो गया ! अब वह एक हठीला, चंचल, और शरीर जीवन नहीं रहा अब युवावस्था की राह पर चलने वाला सोलह वर्षीय युवक है ! मैट्रिक भी पास कर चुका है फिर भी अभी विद्योपार्जन की लालसा रखता है ! अब उसके हृदय में गम्भीरता, शान्तता, और स्थिरता ने स्थान पा लिया है ! अब उसके हृदय में नई मां के गोद में उछलने, कूदने, और इठलाने वाले भाव नहीं है ! वरन् उनके बदले विमला के प्रति पवित्र और अनूठा प्रेम तथा अटूट श्रद्धा है; वह अब भी अपनी नई मां के पास बैठ कर घन्टों बातें किया करता है ! पर उसका विषय अब 'फूल' नहीं है ! बाज़ार चलने का अनुरोध नहीं है ! अब

वह संसार की तमाम बातों की चर्चा किया करता है। हां अकसर अपने कालेज का विषय लाकर खड़ा कर देता है जिसमें कुछ हास्य विनोद का आनन्द पाता है! विमला भी इन बातों में पूरी चेष्टा से काम लेती है!

इसी बीच विमला के एक पुत्र और भी हुआ था जो केवल तीन वर्ष पूरे करके चल बसा! उसको उसका भारी दुःख हुआ पर जीवन के आधार पर धीरे धीरे भूल चुकी थी। उसे जीवन को ही पाकर पूरा सन्तोष था; उसे अपने इस होनहार रत्न पर गर्व भी था! उसके सारे अरमान, सारी आशाएं, बस जीवन के ही जीवन पर टिकी थीं! त्रिलोकी को स्वयं जीवन से बहुत बड़ी बड़ी आशाएं थीं पर वह यह स्वप्न में भी न सोच सकते थे कि उन्हें जीवन के व्यवहारों का सुख उठाने का सौभाग्य अब अधिक दिन तक न मिल सकेगा!

× × ×

दो वर्ष और भी बीत चुके! पर इन दो वर्षों के बीच जीवन के घर में जो हलचल मच गई उसका विचार कभी स्वप्न में भी न था! जीवन पर उसके पिता की अकाल मृत्यु से बड़ा ही कठिन धक्का लगा। इतने लाड़ प्यार से पाला हुआ जीवन इतनी उम्र में कितनी बड़ी ज़िम्मेदारी और चिन्ता में

बंध गया। उसको विद्योपार्जन की धुन तो ठण्डी हो गई और धनोपार्जन की चिन्ता रात दिन उसे सताने लगी। अभी से उस पर गृहस्थी का भार! यह दुर्भाग्य नहीं तो फिर क्या! और विमला का कहना ही क्या, उस पर तो पहाड़ ही टूट पड़ा था! वैधव्य काल कितना भयंकर होता है, वही उसके सम्मुख था! वह कितनी ही क्षीण और निर्बल हो गई थी, प्रति क्षण नाना प्रकार की चिन्ताओं में डूबी रहती थी! जीवन को अपनी नई मां को दुःखी देख कर भी दुःख होता था। इस लिए विमला को जीवन के सामने अधिक चिन्ता करने का समय नहीं मिलता था। अब भी उसके सन्तोष का यदि कुछ साधन संसार में था, तो बस जीवन!

× × ×

विमला ने जीवन की थाली में रोटी देते हुए कहा—

"देखो जीवन तुमसे मैं जब जब जिकर करती हूँ तुम टाल जाते हो!"

"नहीं टालने की कुछ बात नहीं! पर अभी जल्दी क्या है!"

जल्दी क्यों नहीं! अब तुम्हारी उम्र भी काफ़ी हो गई— फिर देखते हो मुझसे अब कुछ भी तो नहीं होता है!"

"तो तुम्हें कौन सी आराम मिल जाएगी ?"

"क्यों नहीं; वह आकर हमारी गृहस्थी का भार उठा लेगी !"

"हमें तो आज कल ऐसी आशा नहीं।"

"तू सदा यही बका करता है, नहीं मालूम तुझे किसने भड़का दिया है।"

"भड़का भला कोई क्या देगा ! जो बात है हम स्वयं समझते हैं !" इतना कहते हुए वह कुल्ला करने के लिए उठ पड़ा !

"अच्छा अब बहुत हो चुका, तू तो कभी भी राज़ी न होगा। मैं मीरा के यहाँ कहला दूँगी कि मैंने उसकी लड़की के साथ तेरी सगाई मंजूर कर ली ! और वह लड़की है भी सुशील !"

"हाँ, सुशील तो सभी हुआ करती हैं।" इतना कहते हुए जीवन सीधे अपने कमरे में चला गया और जाकर चारपाई पर लेट रहा। जीवन के मस्तिष्क में सैकड़ों धाराएँ बह रही थीं। एक ओर माता का अनुरोध ! दूसरी ओर अनेक प्रकार की शंकाएँ ! वह क्या करे, कुछ समझ नहीं पाता था ! मीरा की लड़की शैलजा के विषय में बहुत कुछ पता लगा चुका था जिससे

उसका मन नहीं भरता था! उसे यही शंका थी कि कहीं उसकी नई मां के साथ में शैलजा की खटपट न हो। कहीं वह उनके विरुद्ध आन्दोलन न उठा कर खड़ा कर दे! जीवन अपनी नई मां को बहुत ही आदर और श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। उसे यह असह्य था कि उसके कारण अथवा किसी के भी कारण विमला को कुछ भी कष्ट पहुंचे, उसकी अपेक्षा वह इसे कहीं भला मानता था कि जब तक कि कोई सुशील लड़की न मिले जो उसी की भांति विमला का आदर कर सके, वह क्वारा ही रहे! पर विमला के इस अनुरोध को कैसे टाले, यह भी एक कठिन समस्या थी! वह शैलजा से व्याह करने में साफ़ इंकार भी कैसे करे जब कि विमला उधर इतनी अधिक झुकी थी; कदाचित उन्हें जीवन के साफ़ उत्तर से बहुत दुःख हो। इस प्रकार की कितनी ही बातें वह सोचता रहा और फिर घड़ी की ओर देखा पौने दस बज रहे थे। उसने कपड़े पहने और काम पर चला गया! अब वह प्रति मास १५०) रु० अपने गृहस्थी भर के लिए पा जाता है! एक अच्छी जगह पर इन्सपेक्टर की उपाधि पाई है!

× × ×

"हां बहेन! इसमें तो सन्देह नहीं कि यदि आज के दिन

त्रिलोकी बाबू होते तो जीवन की शादी बड़े धूम से होती ?

"पर हमारे भाग्य तो ऐसे नहीं थे !" इतना कह कर विमला ने एक ठण्डी सांस ली। यशोदा ने विमला का विचार बदलने के लिए अपना वाक्य बदल दिया !

"अच्छा बहू तो तुम्हें बहुत सुन्दर मिल रही है ! जीवन तो बड़ा ही खुश होगा !"

"क्या जाने दीदी ! चाहती तो यही हूं कि वह प्रसन्न रहे !"

"क्या तुमने पूछा नहीं !"

"लाख पूछो तो क्या ? वह इतना शर्मीला है कि कभी कुछ इस विषय पर बोलता ही नहीं !"

"होना ही चाहिए ! फिर तुम जैसी मां को पाकर वह तुमसे सदा भलाई की ही आशा रखता होगा !" यशोदा ने पीछे घूम कर देखा जीवन आ रहा था !

"वह देखो जीवन आ भी गया ! आज तुम्हें रोटी की भी देर हुई ! हमें भी बहुत से काम करने हैं ! अच्छा अब जाती हूं"।

इतना कह कर यशोदा ने अपनी चादर उठाई और उसे ओढ़ते हुए जीवन की ओर देख कर कहा "क्यों जीवन तुम्हारे

ब्याह के कुछ दिन भी तो नहीं हैं ! देखो अच्छी खासी दावत देना !"

जीवन मुस्करा कर अन्दर चला गया !

"वह जवाब कभी न देगा !" विमला ने हँस कर कहा !

"अच्छा तो अब जाती हूं ।"

"कल फिर कृपा करना दीदी ! तमाम काम पड़ा है ।"

"हां, हां, ज़रूर आऊँगी !"

× × ×

"यह तरीक़ा तो अच्छा नहीं कि तुम अब भी उसी तरह काम किया करो ! यही कहती थी कि हमें आराम मिलेगा ।"

"नहीं बेटा ! बहुम आराम है ! मैं उसे आंख भर देखती हूं यही सुख है !" विमला ने हँस कर कहा ।

"लेकिन हम इस सुख को सुख नहीं कहते !"

"तू यूहीं बका करता है । तुझे इसकी क्या चिन्ता ।"

"चिन्ता ? हमें जितनी चिन्ता है नई मां ! बस हमी जानते हैं; हम वही सब देख रहें हैं जिसकी हमें शंका थी ।" जीवन ने कुछ उदास होकर कहा !

विमला ने जीवन का मलिन मुख देख कर उसके सर पर हाथ फेरते हुए कहा—"तुम इतनी फिकर मत करो ! जीवन !

वह संभल जाएगी, बहुत शीघ्र संभल जाएगी ! अभी वह स्वयं कम उम्र है, फिर नई व्याही है उसे अधिक काम काज शोभा नहीं देता।"

"तुम्हीं तो उसे सर पर चढ़ाती हो!" जीवन शायद कुछ और कहता पर इतने ही में शैलजा आ पहुंची—वह उठ कर बाहर चला गया !

दफ़्तर से आते ही जीवन ने देखा कि विमला एक थाली में थोड़ा सा चांवल लिए बीन रही है और साथ ही साथ अश्रु-पात भी…! और दूसरी ओर शैलजा एक पिशाचिनी की भांति लाल लाल आंखे किए खम्भे की टेक लगाए खड़ी है ! जीवन को देखते ही शैलजा अन्दर चली गई। विमला ने आँसू अच्छी तरह पोछ डाले पर जीवन ने इस सन्नाटे में ही पिछले पन्ने उलट कर पढ़ लिया ! और निस्तब्ध होकर बहुत समय तक उसी तरह आगन में खड़ा रहा ! इतने में विमला ने उसकी ओर देख कर कहा—"जाओ जीवन ! कपड़े उतार कर हाथ मुँह धो कर कुछ खा पी लो !"

जीवन ने एक बार विमला की ओर देखा और फिर पास

वाली कोठरी में जाकर लेट रहा, मानों उसने विमला के शब्द सुने ही नहीं !

इधर शैलजा इस विचार में थी कि जीवन के आते ही कुछ खरी खोटी सुनाऊँगी ! यद्यपि जीवन कभी उसकी बातों पर ध्यान नहीं देता था फिर भी वह अपने दिल के ग़ुबार निकाल लेती थी ! जीवन जब बहुत देर तक उसके कमरे में न आए तब वह उठकर बाहर आई और विमला से तड़क कर पूछा—

"अब कहां गए ? कुछ सिखा पढ़ा दिया होगा !"

"नहीं बहू ! मैं क्या सिखला दूँगी !..." विमला पूरी बात कह भी न पाई थी कि शैलजा फिर बीच ही में बोल उठी !

"अच्छा बस ! बातें न बनाओ, पहले बताओ गए कहाँ ?"

विमला कोठरी की ओर संकेत करने ही वाली थी कि जीवन कोठरी से निकल पड़ा और शैलजा की ओर तड़ककर बोला—' अच्छा बस ! खामोश !"

विमला ने चावल की थाली वहीं छोड़ दी और जीवन का हाथ पकड़ कर ज़बरदस्ती अन्दर बुला ले गई ! जीवन चारपाई पर बैठ तो गया पर क्रोध से कांपता जाता था और जो जी में आता था बकता जाता था। "नई मां ! तुम्हीं ने अपने आप अपने पैरों में कुल्हाड़ी मारी ! मैं कहता था—

बराबर कहता था—कि इस पिशाच्चिनी से शादी न करो पर तुम न मानीं, बाह्य सुन्दरता पर टूट पड़ीं! आज वही सुन्दरता से विष टपक रहा है! इसके कारण मेरा जीवन भार हो गया—मेरी दुनिया ही पलट गई!' इतना कहते हुए वह एक बार शैलजा की ओर फिर बढ़ा पर विमला ने रोक लिया!

× × ×

द्वार के खटखटाने की आवाज़ आई; शैलजा ने जाकर दर्वाज़ा खोला! जीवन हाथ के बैग को संभालते हुए अन्दर आया!

शैलजा ने आश्चर्य से पूछा—"इस समय कौन सी गाड़ी आती है?"

"ऊहँ, गाड़ियां कितनी ही आती हैं! कहो यह चार दिन अच्छे थे!" जूता का फीता खोलते हुए जीवन ने कहा! पर विमला को अभी तक सामने न पाकर कुछ नशंकित हो उठा!

"अच्छी तरह क्यों न कटती?" शैलजा ने कहा!

"अच्छा नई मां कहाँ गई?"

"वह तो पुण्य लूटने गई हैं।" शैलजा ने मुस्करा कर कहा!

"पुण्य लूटने?" जीवन ने आश्चर्य से पूछा!

"हां"। शैलजा फिर हँस दी।

"कहां गईं ? ठीक ठीक क्यों नहीं कहती ?"

"ठीक ठीक क्या कहूं, कह तो दिया ! कोई खास ठिकाना नहीं बता गईं जो कह दूँ।"

जीवन घबड़ा कर उठ पड़ा और पूछा—

"किसके साथ गईं ?"

"अकेले !"

"कुछ भी नहीं कह गईं ?"

"कह गईं है अब मुझे कुछ दिन ईश्वर भजन करना चाहिए !"

"तुमने उन्हें रोका नहीं ?"

"नहीं क्या रोका" शैलजा ने भिन्ना कर कहा।

"फिर ?"

"वह कब किसी की सुनती हैं ?"

"नहीं उन्होंने तो बहुत सुना है !" जीवन के आंसू के धार बह चले, उसका बदन थर्राने लगा ! "नई मां !" "नई मां" पुकारते हुए वह गिर पड़ा !

× × ×

अड़तालिस घंटे हो गए ! पर जीवन के मुँह में पानी तक

नहीं गया। ज्वर से पीड़ित जीवन का हृदय अपनी 'नई मां' की शान्तदायनी गोद ढूँढ़ ढूँढ़ कर हताश हो उठता है! जो जीवन पाँच वर्ष की अवस्था से मातृहीन होकर फिर मां की गोद पा गया था आज फिर अपने को मातृहीन समझ रहा है। जिस सुख को पाकर वह फूल उठा था वह आज लुट गया! पिता का देहान्त हो गया था, सन्तोष हो गया था, पर "नई मां" का बिछोह जला रहा है! आज ही तो उसे अपना जीवन शून्य मालूम हो रहा है! उसे हाथ पसारे इस संसार में अब कुछ नहीं सूझता है! वह कहां जाकर अपनी "नई मां" को ढूँढ़े? कहां पुकारे?

शैलजा जीवन के पैताने बैठी हुई गहरे समुद्र में गोते लगा रही है! वह न समझ सकी थी कि नई मां के चले जाने पर जीवन की यह दशा होगी। जिस सुख के लिए उसने विमला को अभागिनी कह कर घर से निकल जाने का आदेश दिया वही सुख उसके लिए......। वह अपनी भूल को कदाचित अब कुछ समझ रही है! बैठे ही बैठे उसकी नज़र जीवन की मेज पर की किताब पर पड़ी जिसमें एक पर्चा कुछ बाहर की ओर निकला हुआ खुसा था जो विमला की लिखाई का था! उसे और भी भारी शंका हुई! उसने बड़ी ही सावधानी से उस पर्चे

को निकाल कर पढ़ना चाहा कि इतने में जीवन की आंख खुल गई ! वह शैलजा के हाथ में पत्र देख कर चौंक पड़ा ! शैलजा उसे पढ़ भी न पाई थी और छिपा भी न पाई ! जीवन अपने कांपते हुए हाथों में लिए हुए पर्चे को थर्राती हुई आवाज में पढ़ता चला गया !

मेरे लाल !

मुझे दुःख है कि मैं स्वयं तुम्हें अपने आँखों से ओट कर रही हूँ। पर भाग्य में कुछ ऐसा ही था ! मैं तुमसे अनुरोध करती हूँ कि तुम मेरी शैलजा को किंचित भी कष्ट न देना ! अब भी कहती हूँ, वह निर्दोष है ! देवी है ! तुम्हारी गृह लक्ष्मी है ! तुम्हें उसका विचार रखना चाहिए ! अपने कर्तव्य की ओर ध्यान दो ! मेरे जीवन ! अब भी तुमसे एक भिक्षा मांगती हूं कि अपना हाल काशी में अपने मामा के नाम भेज दिया करना ! बस मुझे उसी में शान्ति मिलेगी ! बिना तुम्हारा हाल पाए कदाचित मैं बहुत दिन जीवित न रह सकूंगी ! अच्छा ईश्वर तुम्हें सुखी रखे ! बस—!

तेरी वही—

"नई मां"

पत्र समाप्त होते ही जीवन के हाथ से गिर पड़ा, शैलजा भी मूर्ति की भाँति खड़ी की खड़ी रह गई ! उसकी आंखों का पर्दा आज विमला का पत्र सुन कर हट गया। अब वह समझ सकी कि उसने क्या क्या काम किया और किसके साथ ! उसकी आत्मा उसे धिक्कारने लगी ! वह अपने को घृणा करने लगी ! वह अपने पापों का भार न सह सकी और संज्ञाहीन जीवन के पैरों पर गिर कर फूट फूट कर रोने लगी। उसके गर्म आँसुओं ने जीवन को होश में ला दिया ! जीवन ने एक ठोकर दी, शैलजा ज़मीन पर गिर पड़ी, परन्तु तत्क्षण वह फिर उठी और जीवन के पैरों को पकड़ अपना अपराध कह सुनाया कि उसने विमला को कौन कौन सी ताड़ना देकर घर से निकल जाने का अनुरोध किया था ! वह अपने पापों का प्राश्चित भी कैसे करे समझ नहीं पाती ! उसने ज़ीवन से प्रार्थना की कि यदि वे एक बार उसे विमला से मिला देते तो वह उसके चरणों पर गिर कर अपने अपराधों की क्षमा माँग लेती। जीवन सजल नेत्रों के साथ सब कुछ सुनता रहा और फिर बोला !

"वह तुझ कुटिला का मुँह भी न देखेंगी !"

"नहीं वह क्षमाशील हैं, मेरे अपराधों को क्षमा कर देंगी !" शैलजा ने रोकर कहा !

"मुझे आशा नहीं कि वह फिर यहां आ सकेंगी !"

"आ सकेंगी ! अवश्य आवेंगी ! यदि तुम एक बार अपना हाल......! आह ! यदि एक बार उन पवित्र चरणों को...!"

× × ×

"लो, तुम्हारी चिट्ठी आई है !" कह कर बिनोद बाबू चिट्ठी को रसोई में ही विमला को देने लगे ! विमला ने रोकते हुए कहा ! "कहां की है ? तुम्हीं पढ़कर सुना दो !"

"नहीं यह गुप्त पत्र है तुम्हीं खोलो !" विनोद ने कहा !

विमला समझ गई पत्र जीवन का होगा। उसने जल्दी से आटे को धोकर अपना पत्र खोला। पत्र की लिखावट तो वही थी जिसके लिए वह अधीर थी ' विमला पत्र को, एक बार, दो बार, और कई बार पढ़ गई फिर भी पत्र हाथ के हाथ ही में रहा !"

× × ×

जीवन को कुछ चेतना हुई, ऐसा मालूम हुआ कि वह किसी की गोद में लेटा है। दृढ़ता पूर्वक आंख खोल कर देखा कि विमला उसके सर पर हाथ फेर रही है और शैलजा बहुत ही शान्त और सन्तोष भाव से पास ही खड़ी है, मानों उसने पहले ही विमला से अपने अपराधों की क्षमा मांगकर निर्दोष हो चुकी

हो। जीवन कुछ अधिक बोल न सका परन्तु अपने कांपते हुए हाथ विमला के चरणों की ओर बढ़ना चाहा कि विमला ने उसके हाथ पकड़ कर चूम लिए! जीवन सहसा पुकार उठा—
"नई मां!"

जीवन! मेरे जीवन! कैसे हो?" विमला ने रोते हुए कहा।

"अच्छा हूँ नई मां!"

"अच्छे तो नहीं हो!" विमला ने जीवन के पेट पर हाथ फेरते हुए कहा!

"नहीं, यह सुखमय गोद पाकर अब मैं बिलकुल अच्छा हूँ नई मां!"

संकल्प

मैंने पीछे घूम कर देखा, वह फिर हंस पड़ी, मैंने कुछ रोष दिखाते हुए कहा "आप क्यों हंसीं ?"

"आपकी सज़ा पर," उसने फिर हंस कर कहा।

"सज़ा"

"हां"

"कैसी"

"ऐसी !" उसने मेरे गांठ की चोट की ओर संकेत करते हुए कहा।

"देखो मज़ाक अच्छी नहीं होती !"

"और, ज़नाने बाग़ का आना भी अच्छा नहीं होता।"

"बाग़ ज़नाना,"

"हां, ज़नाना।" उसने व्यंग में कहा।

"कौन कहता है ?"

"मैं," उसने दृढ़तापूर्वक कहा।

"मै तो यहां कई बार आ चुका !"

"पर आज तो पकड़ गए ?"

मैं लज्जित हो गया, कुछ बोल ही न सका, और वहां से चलने लगा।

"अच्छा अपनी चोट तो देख लीजिए," उसने दयाभाव से कहा।

"चोट ! अब यहां न देखूंगा !"

"क्यों"

"यह बाग़ ज़नाना है, इसलिये !"

मैं वहां से चल दिया ! बाग़ के सिरे पर आकर फिर घूम कर देखा—वह उसी प्रकार निस्तब्ध रूप से मेरी ओर देख रही थी। जी में आया, क्षणभर और ठहर जाऊँ, पर बुरी तरह परास्त हुआ था, ठहरता कैसे ?"

× × ×

मैं वहां से चला आया, परास्त होकर, लज्जित होकर और आत्मसम्मान खोकर ! साथ ही साथ और भी कुछ बहुमूल्य वस्तु खोकर चला आया ! इस उलझी हुई पहेली को निरंतर सुलझाता रहा हूं, पर सुलझ नहीं पाती थी ! सुनते थे मनुष्य जिसके द्वारा परास्त किया जाता है, लज्जित किया जाता है, उसे अपना शत्रु मानता है ! उसकी ओर आंख उठा कर

देखना नहीं चाहता ! उसका नाम तथा उसकी चर्चा अपने कान तक लाना नहीं चाहता ! पर जो कुछ सुना था, वह झूठ निकला । सच वही मालूम हो रहा है, जो अनुभव हो रहा है ! हां मुझे भास हो रहा है ! नहीं, नहीं, सच कह रहा हूं कि वह अनन्त जलराशि में निरंतर प्रवाह की भांति मेरे मस्तिष्क में बह रही है ! क्षणिक घटना, मेरे वक्षस्थल में असंख्य घटनाओं के रूप में अंकित हो गई है ! हृदय तंत्री के सारे स्वर उसी का गुण गाने में व्यस्त हैं । पाठक ! मेरे हृदय से एक बार तो पूछो क्या वास्तव में, उसकी स्निग्ध कान्त, उसकी मनोरम छवि भुला देने योग्य है ? क्या उस सारी का रंग जो उसके सुन्दर शरीर पर शोभित थी इन्द्र धनुष को लज्जित नहीं करता था ? क्या उसका वह बदन मण्डल, चन्द्र मण्डल की भांति उस सांयकाल के समय पूरे उद्यान में अपनी छटा नहीं फैला रहा था ? वह एक छोटा सा उद्यान ! और कितना सुन्दर !! वहां के कुसुम तरुगण गर्व से उन्मत्त हो रहे थे, कारण ? उनकी पुष्प सम्पत्ति उन्हीं कोमल हाथों द्वारा......... ! याद है पाठक ! अभी तीन ही दिन तो हुए, जब उस उद्यान में गया था—यह देखो, वहां की चोट भी तो अभी वही सब याद दिला रही है !

× × ×

केवल परीक्षा ही देने तो दिल्ली आया था। आज सब पेपर भी तय कर चुका, पर यह भगवान जाने, कि कैसे ? अपने जीवन का एक बहुत बड़ा कार्य्य जान कर अथवा मस्तिष्क का भार जान कर। इसका फल क्या होगा ? इसका भी तो भय नहीं रहा ! यहां तो लगन कुछ और ही लगी थी ! मन की उमंग कुछ और ही सिखला रही थी ! सच पूछो तो घर आज ही जाना चाहिए था, पर दो चार दिन के लिए रुक गया, केवल इसलिए कि इन दिनों में एक बार, दो बार, दस बार, सौ बार ! जितना भी उसे देख सकूं देख लूं—यदि साहस हो सके तो उससे कुछ कह भी लूं।

मन में दृढ़ संकल्प किया, आज फिर उसी बाग़ में जाऊंगा। कदाचित वह आज भी आई हो ! वहां फिर निरादर होगा, तिरस्कार होगा, होने दो, यदि एक बार अपने कर कमलों से हमारा हाथ पकड़ कर बाहर भी निकाल देगी तो अपना सौभाग्य समझूंगा, उसके कर स्पर्श से स्वर्गीय सुख का अनुभव करूंगा ! यही सब सोच कर चल पड़ा ! भाग्य-विधाता कदाचित अनुकूल ही थे ! आधी दूर भी न पहुँचा होगा कि देखा बाएं फुट पाथ पर वह अन्य दो युवतियों के साथ इसी ओर चली आ रही है। मैं लाख चेष्टा करने पर भी आगे अधिक न बढ़ सका, पैरों को

मानों किसी ने बेड़ियों से बांध दिया हो, पर वहां अब खड़ा भी कैसे रहता, देखने वाले क्या कहते ? और बाग़ की ओर भी न जा सकता था, वह तो कदाचित यमुना की ओर बढ़ रही थी। खैर किसी प्रकार अपने भाव को छिपाने के लिए सड़क के किनारे एक दूकान पर खड़ा होकर फलों के ढेर में से एक सेब उठा कर उसे देखने लगा ! परन्तु एक आंख उस सेब को देख रही थी और दूसरी 'उसे' ! मैंने यह भी देखा कि वह एक क्षण कुछ ठिठुक गई, उसके साथ की दोनों युवतियां कुछ आगे बढ़ चुकी थीं ! तब वह फिर चल दी। उसने मुझे देखा या नहीं यह भगवान् जाने ! पर यदि देखा नहीं तो रुकी क्यों और यदि रुकी तो आवश्यकता ही क्या थी ? क्या उसके हृदय में भी कुछ दया है ! विश्वास तो नहीं होता, वह तो केवल तिरस्कार करना जानती है। यही सब मैं खड़े खड़े सोचता रहा, धीरे धीरे वह बहुत दूर निकल गई। मैं भी कुछ देर बाद उसी ओर चल पड़ा क्योंकि आख़िर करता क्या ? वह तो उसी ओर गई थी ! वह बहुत आगे जा चुकी थी फिर भी मैं बहुत धीमी चाल से चल रहा था कि कहीं रास्ते में ही फिर मुठभेड़ न हो ! वहां पहुँच कर देखा तीनों की तीनों घाट के कोने पर बैठी चिराग़ जला जला कर यमुना में बहा रहीं थीं ! मैं कुछ क्षण तो उन लोगों

से काफ़ी दूर पर खड़ा रहा, और उसके बाद घाट के पास ही बँधी हुई नाव पर जा बैठा ! ज़रा देर में देखा—तीनों चिराग़ कुछ कुछ दूर के फ़ासले पर बहते हुए मेरी नाव के पास से निकल रहे थे। मेरा एक पैर पानी में था और उसी से मैं पानी को धीरे धीरे उछाल रहा था। उन दीयालियों को देख कर मुझे कुछ शरारत सूझी। मैं और भी ज़ोर के साथ पानी को उछालने लगा ! आख़िर एक दीयाली पर पानी पड़ ही गया और वह बुझ गई। मुझे क्या मालूम था कि वह तीनों में से किसकी है। इतने ही में पीछे से एक ज़ोर की आवाज़ आई।

"देखो मालती ! तुम्हारी दीयाली बुझ गई।"

"कैसे ?' एक सुरीली आवाज़ आई ! मैं उस आवाज़ से परिचित तो था ही, समझ गया कि 'मालती' उसी का शुभ नाम है और यह दीयाली भी उसी की थी। पाठक स्वयम् समझ गए होंगे कि छेड़-छाड़ करने का तो तात्पर्य था ही ! मैंने उधर घूम कर देखा—एक युवती अपना बायां हाथ मालती के कंधे पर रक्खे और दाहिने हाथ की उंगली से मेरी ओर संकेत कर रही थी मानो वह बता रही हो कि उसकी दीयाली कैसे बुझी ? मैंने बड़ी चेष्टा करके उस बहती हुई दीयाली को उठाया।

"लीजिए", मैंने दियासी उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा, "फिर से जला लीजिए।"

चांदनी तो छिटकी थी ही, वह मुझे पहचान गई।

"यह क्या आपने इसे गुल क्यों कर दिया ?" उसने मुस्कराते हुए कहा।

"इसी लिए कि इसे यहां न जलना चाहिए था।" मैंने भी गर्व से कहा !

"क्यों ?" उसने आश्चर्य से पूछा !

"यह घाट ज़नाना तो नहीं था ना ?"

इस बार वह हार गई, बहुत ही लज्जित हुई, और आंखें नीची करलीं। पर कितनी देर के लिए ? स्वभाव की तो चंचल थी ही भला कब तक चुप रह सकती थी ? उसके साथ की दोनों युवतियां उसकी और मेरी छेड़-छाड़ को ध्यानपूर्वक देखती रहीं, फिर आख़िर एक ने कुछ पूछ ही लिया ! पर उसने क्या पूछा, यह मैं सुन न सका। हां इतना ज़रूर देखा कि मालती ने मेरी ओर संकेत करके उसके कान में कुछ फूँक दिया। इतने में मेरे पास ही किसी की आवाज़ हुई !

"बाबूजी चलिए, ज़रा घुमा लावें !" ।मैंने सर घुमा कर देखा एक वृद्ध नाव के पास खड़ा था !

"क्या यह नाव तुम्हारी ही है," मैने पूछा।

"नहीं मालिक यह आप ही की है।" उसने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया।

मैंने वृद्ध के इस नम्र वाक्य पर मुस्करा दिया और फिर कुछ सोच कर उन लोगों की ओर संकेत करके कहा :

"उन लोगों से पूछो, शायद वह भी जायंगी।"

"क्या आपही के घर की हैं ?"

"घर की तो नहीं, पर मैं उन लोगों को जानता हूं," मैंने गम्भीर भाव से कहा।

वृद्ध उन लोगों के निकट गया। वे तीनों कुछ क्षण तक आपस में गुपचुप करती रहीं, फिर चल पड़ीं। उन लोगों का नाव पर आना देख मैंने अपने भाग्य को सराहा। मैं खिसक कर नाव के एक किनारे हो गया, वे तीनों आकर मुझसे कुछ दूर पर बैठ गईं! वृद्ध नाव खोल कर आकर बैठ गया, नाव जल-धारा का साथ देने लगी। नवका उस अथाह जल राशि को नापती हुई चुपचाप चली जा रही थी और नाव के अन्दर भी नीरवता थी। बहुत कुछ रास्ता इसी प्रकार तै होगया! कदाचित सभी सोच रहे थे कि कौन बोले, और क्या ? मैं ही क्या बोलता ! अन्य युवतियों के कारण कुछ सकुचाहट थी, पर

मालती कब सकुचाने वाली ? उसकी तो सहेलियां ही थीं ! शायद वे मालती की सभी बातें जानती होंगी ! आख़िरकार मालती ने ही वह नीरवता तोड़ना चाहा और मेरी ओर देख कर कहा—"कहिए, आपकी चोट कैसी है ?"

"चोट ! अब तो कुछ अच्छी है," मैने कहा !

दोनों युवतियों में से एक मालती की ओर देख कर बोल उठी, "कैसी चोट ?"

"इन्हीं से पूछो !" मालती ने मेरी ओर संकेत करके कहा।

उसने मुझसे कुछ पूछा तो नहीं हां मेरी ओर देख कर उत्तर की प्रतीक्षा करने लगी !

"इन्ही से पूछिए," मैने भी मालती का अनुकरण करते हुए उसी ओर संकेत करके कहा।

वह मेरे इस वाक्य से चकित होगई। मालती ज़ोर से हंस पड़ी, मैं भी हंस पड़ा, फिर वे दोनों भी हंसीं ! हंसी के रुकते रुकते नाव भी रुक गई ! देखा उसी स्थान पर फिर आगए जहां से नाव चली थी ! फिर क्या, दोनों युवतियां उतर पड़ीं, पर मालती ने कुछ ढील-ढाल की ! वे जब उतर कर सिढ़ी पर चढ़ने लगीं तब मालती भी उठी !

"मालती मुझे तुमसे कुछ कहना था," मैने उसे जाते देख कर कहा ।

मैं कह नहीं सकता कि यह 'तुम' शब्द उसे खटक तो नहीं गया। कुछ भी हो मुझसे आप नहीं कहा गया! "तो फिर कल कह लेना, आज देर होती है," उसने जवाब दिया।

"कल ? कहां मिल सकोगी ?" मैने विनीत भाव से पूछा।

"उसी बाग़ में," उसने उतरते हुए कहा।

"उसी बाग़ में," मैं चकित हो गया!

"हां, उसी बाग में," मीठी सी हंसी के साथ कहा और जल्दी जल्दी सब सीढ़ियाँ चढ़ कर अपने झुंड के साथ बाहर मिल गई!

× × ×

काफ़ी समय तक बेंच पर बैठा रहा, पर कोई भी दिखलाई न दिया, मन यही कहता था कि कहीं ऐसा तो नहीं कि मेरा मज़ाक उड़ाने के लिए उसने मुझे धोखा दिया हो। आत्म-सम्मान तो उसके हाथों खो ही चुका था इसलिए अब डर ही क्या था ? कुछ समय तक और बैठा रहा, इतने में पीछे से किसी के कोमल हाथों द्वारा अपनी आंखें बन्द पाईं; विश्वास तो न हुआ कि उसका इतना साहस होगा क्योंकि मैं यही समझता था कि उसके हृदय में मेरे लिए ज़रा भी स्थान नहीं, वह केवल मेरा

निरादर करना अपना काम समझती है, पर नहीं यह मेरा भ्रम था। मैंने हाथ हटा कर देखा वह हंस पड़ी।

"तुम फिर यहां आ गए?"

"हां, लेकिन आज की सज़ा तुम्हें मिलनी चाहिए!"

"क्यों," वह उसी जगह बैठती हुई बोली।

"आज तो कसूर तुम्हारा है, तुम्हीं ने तो बुलाया है!" वह लज्जित हो गई, बात पलटते हुए मैंने फिर कहा:

"अच्छा यह बताओ, तुम केवल सबका तिरस्कार ही करना जानती हो या कुछ और भी?"

"और क्या करना चाहिए?"

"बहुत भोली न बनो, मालती!"

वह मुस्करा कर रहगई! ज़रा देर बाद बोली!—

"अच्छा कल क्या कह रहे थे? जल्दी कहो?"

"इतनी जल्दी क्या है?"

"घर जाने में देर होगी"

"देर होगी—हां तो मुझे सिर्फ़ यही पूछना है कि तुम्हारे हृदय में भी मेरे प्रति कुछ स्थान है?"

वह मेरा वाक्य सुन कर मानों संज्ञाहीन हो गई, बहुत समय तक चुप रही!

"उत्तर दो !" मैंने फिर कहा।

उसने अपनी पूरी शक्ति से काम लेकर कहा "नहीं" ! मेरे पैरों के तले की ज़मीन खिसक गई। मैं अवाक सा रह गया ! पर उसे ऐसा कहने में इतना कष्ट क्यों हुआ यह न समझ सका ! ज़रा ही देर में देखा, उसकी आंखें सजल हैं, मेरा दिल हिल गया।

"तुम रोती क्यों हो ?" मैंने उसका हाथ पकड़ कर बड़े अनुरोध से पूछा !

उसने कुछ उत्तर न दिया !

"बोलो मालती ! तुम क्यों रोती हो, रोना तो मुझे चाहिए था पर तुम क्यों रो रही हो !" मैंने अब की और भी विनीत भाव से कहा।

"नहीं मैं रो नहीं रही हूँ !" उसने आंसू छिपाते हुए कहा !

"तुम्हारे आंसू मुझसे न छिप सके मालती ! तुम्हें बताना होगा तुम क्यों रोती हो !"

वह फिर भी बहुत समय तक चुप रही, मानों मुझे दिखाने के लिए अपने हृदय के इतिहास के पन्ने तरतीबवार सजा रही हो ! मैं तो उन्हें पढ़ने के लिए उत्सुक बैठा था।

"मैं रोती हूँ," उसने कहना शुरू किया—"अपनी

विवशता पर! तुम मेरे हृदय में अपना स्थान चाहते हो—यदि मैं उसे दे पाती तो अपने को धन्य समझती, पर ऐसे भाग्य नहीं! समाज के नियमों में हृदय की स्वतंत्रता नहीं मानी जाती। वह हृदय का स्वतंत्र होना नहीं देख सकता और विशेषकर स्त्री जाति का! स्त्री का हृदय समाज की दृष्टि में एक पाला हुआ पंछी है—जिस पिंजरे में बन्द कर दिया जाय उसे उसी में रहना होगा, चाहे वहां वह सुख अनुभव करे या दुख!"

मैं उसकी गाथा को हृदय थामे सुनता रहा और वह कहती गई—

"मेरे ब्याह के अब केवल बीस दिन शेष हैं, बस अब मेरे हृदय पर मेरा कुछ अधिकार नहीं। मेरे हृदय में स्थान पाने वाला कोई दूसरा ही है चाहे वह कोई, और कैसा भी क्यों न हो!"

"मेरे ब्याह के अब केवल बीस दिन शेष हैं।" सुन कर मैं थर्रा उठा।

"मालती! तुम्हारा ब्याह किसके साथ और कहां हो रहा है, बताओगी?" बीच ही में उसकी बात काट कर मैंने पूछा।

"नहीं, मैं उसे न बता सकूंगी", उसने दृढ़तापूर्वक कहा—"वह कौन है और कैसा है इसे पूछ कर तुम क्या

करोगे ? वह कैसे भी हों मेरे लिए सब कुछ हैं, मेरे लिए पूज्य हैं ! लेकिन मैं तुमसे ऐसी बातें कर रही हूं, मैं जानती हूं यह भी मेरे लिए पाप है, पर तुम्हारे अनुरोध ने मुझसे यह सब कहला लिया और कुछ हृदय की निर्बलता ने—तुम जब जब यहां आए मैंने तुम्हें बराबर देखा, मन की उमंग बोलने के लिए बाध्य भी करती थी पर कर्तव्य पीछे हटा देता था ! उस दिन बहुत साहस करके मैंने तुमसे कुछ हंसी की । तुम्हारे चोट लगी थी, मैंने हंसी उड़ाई थी पर तात्पर्य तो केवल छेड़ने का था ! तुम यहां से चले गए, मैं यहां कब तक खड़ी रही और क्या सोचती रही, कुछ कहने की बात नहीं ! हां यह भी सोचा था अब तुमसे कभी न मिलूंगी, पर कल तुम मिल गए, तुम्हारे अनुरोध से आज फिर मिलना पड़ा ! अच्छा आज सौगंध खाकर कहती हूँ कि अब कभी न मिलूंगी, ऐसा अनुचित कार्य कभी भी न करूंगी ! अब मुझे जाने दो—अब जाने दो !"

इतना कह कर वह उठकर खड़ी हो गई ! मालूम नहीं मैं उसके हृदयोद्गार को किस तरह सहता रहा । मेरे ऊपर बराबर छूरियां चल रही थीं और मैं निर्जीव की भांति सब सहता रहा, पर उसे जाते देख कर विकल हो उठा और अपने दोनों हाथों

से उसके पैर कस कर पकड़ लिए ! पर उससे कहता क्या ? अब कहना था ही क्या ? उसने तो इतनी दर मे मेरा संसार ही पलट दिया—मैं केवल उसकी ओर एक-टक देखता रहा। उसकी आंखो से तो अश्रु बह ही रहे थे, मैंने भी उनका साथ दिया ?

"अच्छा अब क्षमा करो," उसने अपने पैर छुड़ाते हुए कहा, "मैं जाती हूं, अब जीवन में फिर कभी न मिलूंगी ! और तुमसे भिक्षा मांगती हूँ कि तुम भी संकल्प कर लो कि मुझसे मिलने की चेष्टा अब इस जीवन में कभी न करोगे !"

मुझ पर वज्राघात हुआ ! पागलों की भांति मैंने उसका हाथ पकड़ लिया।

"मालती !" मैंने कहा, "यह क्या कहती हो ···संकल्प···· संकल्प···!"

"हां, संकल्प·······!" उसने एक आह भर कर कहा।

"अच्छा मालती ! संकल्प····करता हूं··············!"

मेरा गला रुंध गया, मैं और कुछ न कह सका ! वह अपना हाथ छुड़ा कर चली गई। मैं एकटक उस ओर देखता रह गया और फिर अचेत हो गया !"

—— ——

"प्रथम और अन्तिम बार"

सुरेन्द्र—"क्या इस छुट्टी में घर न जाओगे?"

रजनी—"जाऊंगा क्यों नहीं, कल ही तो जाने का विचार है और तुम्हें भी साथ लेकर।"

सु०—"सच कहते हो?"

रज०—"नहीं तो क्या झूठ?"

सु०—"तभी तो यह हाल है कि बिना बताए ही जाने वाले थे। अभी न पूछते तो कल जनाब नौ दो ग्यारह हो जाते! क्यों न?"

रज०—"यह कैसे होता। भला बतलाते क्या जब कि अब तक कुछ पक्का इरादा ही न था।"

सु०—"तो यूं कहिए कि मेरी ही शक्ल पर आपका इरादा पक्का करने का नुसखा था, क्यों?" रजनी सुरेन्द्र की इस मज़ाक पर हंस पड़े!

रज०—"तुम चलोगे तो पक्का ही है!"

सु०—"नहीं तो—"

रज०—"शायद ही—"

सु०—"क्यों"

रज०—"कुछ ऐसी खास इच्छा नही है, हां बाबू जी का विचार है; खैर चलो तो चले ही चलें, !"

सु०—"मगर यार ! तुम्हारे घर में लोगों को व्यर्थ ही कष्ट होगा !"

रज०—"कष्ट ! फिर यूं कहो कि हमारे जाने से भी कष्ट होगा !"

सु०—"अच्छा तो कल देखा जायगा।"

रज०—"अब कल देखना क्या है, हम लोगों का कल सुबह की गाड़ी से जाना निश्चय रहा।" इतना कह रजनी उठ खड़ा हुआ !

सु०—"तो अब चल ही दिए ?"

रज०—"हां, जरा अभी एक किताब देखना है ! देर भी बहुत हो गई," कहते रजनी वोर्डिंग की ओर चल दिए !

× × ×

रजनी देहात के वेहरू गांव का रहने वाला एक सीधा-सादा लड़का है, पर अब लखनऊ युनिवर्सिटी का विद्यार्थी होने

के कारण अब यहीं बोर्डिंग में रहता है। सुरेन्द्र के निरन्तर साथ ने उसे अब इस ज़माने की ठाट-बाट में बदल दिया है। सुरेन्द्र और रजनी में काफ़ी घनिष्टता है।

सुरेन्द्र एक धनी का लड़का है पर अब वह माता पिता के सुख से वंचित है और अपने चाचा के घर में रहता है। पिता का धन उसके लिए बहुत काफ़ी है। वह पढ़ने लिखने में बहुत चतुर और वीणा बजाने में बहुत ही निपुण है।

× × ×

दूसरे दिन सुरेन्द्र सूर्य्यदेवागमन के पूर्व ही अपनी नित्य क्रिया से निवृति होकर दरवाज़े की बैठक में रजनी की प्रतीक्षा में बैठा था कि रजनी का तांगा आ पहुंचा। सुरेन्द्र शीघ्र ही अपना बैग लेकर तांगे पर आ गया। रजनी के अनुरोध से अपनी वीणा भी ले ली!

तांगा स्टेशन पर पहुंच गया था, गाड़ी आ चुकी थी। किसी प्रकार दोनों ने अपना सामान गाड़ी पर रख दिया और खुद भी बैठ गए। इतने में एक आदमी उधर से कुछ हार लिए हुए निकला। हार कुछ अच्छे नहीं थे, शायद पहले दिन के बचे हुए थे—फिर भी सुरेन्द्र ने दो हार ले ही लिए, और एक हार स्वयम् पहन कर दूसरा रजनी को दिया।

सु०—"देखो रजनी यह कलियां कितनी सुन्दर लगती हैं।"

रज०—"हां ऐसा मालूम होता है कि खिल कर लोगों को प्रातः की सूचना दे रहीं हों।"

सु०—"अच्छा रजनी यह कलियां सूर्य्य देव के अस्त होने तक अपनी बहुत कुछ आभा खो चुकेंगी !"

रज०—"निसन्देह ! भला सोचो तो, उन्नति के बाद अवनति......!

सु०—"इसी लिए तो कहता हूं। पर ईश्वर का यह नियम इतना दुखदाई क्यों है ! कदाचित् इसमें भी कुछ रहस्य हो !

रज०—"होगा ही"।

इतने में गाड़ी चल दी !

× × ×

बेहरू गांव आगया, स्टेशन से घर नज़दीक ही था इस लिए दोनों अपना अपना बैग लेकर पैदल ही चल दिए। सुरेन्द्र कभी देहात आया न था इस लिए उसे यहां की प्रत्येक वस्तु नवीन मालूम पड़ती थी। वह प्राकृतिक दृश्य की प्रसंशा करते हुए चल रहा था। घर भी आ गया। द्वार के तख्त पर अपना

सामान रख कर रजनी ने दरवाज़ा खुलाने की चेष्टा की। घर में उस समय उसकी बहन सुधा के अतिरिक्त और कोई भी न था, इस कारण उसी को द्वार खोलने आना पड़ा परन्तु एक अपरिचित की आवाज़ सुनकर वह चटपट कुन्जी खोल अन्दर चली गई। उसने रजनी के मुंह से सुरेन्द्र की प्रशंसा बहुत सुनी थी पर अब तक उन्हें देखा न था! भाई के दोस्त समझकर उनकी मेहमानदारी में बड़े चाव से भोजन का प्रबन्ध करने लगी।

भोजन बन जाने पर सुधा ने बैठक के द्वार पर आकर कुन्डी की सहायता से रजनी को बुलाया।

रज०—"भोजन बन गया?"

सुधा०—"हां"

रज०—"दो थालियों में परोस कर कमरे में ले आओ!"

"बाहर कमरे में······।" सुधा असमंजस में पड़ गई क्योंकि वह अभी तक किसी अन्य पुरुष के सामने निकली न थी! उसके पिता पुरानी प्रथाओं के कट्टर पक्षपाती थे। पर जितना ही धनीराम पुरानी प्रथाओं को मानते थे उतना ही रजनी उन प्रथाओं के विरुद्ध था। रजनी ने सुधा को कुछ असमंजस में देख कर कुछ झल्लाए हुए स्वर में कहा:

"सुधा तुम सचमुच बड़ी पागल हो। बाहर आने में क्या हुआ ? सुरेन्द्र हैं तो मेरे मित्र ही ! अच्छा खाना शीघ्र लाओ !"

सुधा कुछ समय तक निस्तब्ध रूप में खड़ी रही ! उसे पिता के विचारों की ओर देख कर बाहर जाने का साहस न होता था—फिर अब वह युवाअवस्था में प्रवेश कर चुकी थी इसलिए किसी अपरिचित के सामने जाते हुए झिझकती थी। पर करती क्या ? रजनी की बात भी तो माननी ही थी ! उसने लज्जा से आँख नीची किए हुए दोनों थालियां ले जाकर सुरेन्द्र और रजनी के सामने रख दीं और शीघ्र ही वापस आ गई !

दोनों मित्र भोजन करके आराम करने लगे। इधर सुधा भी भोजन करके घनीराम का भोजन रख कर लेट रही। घनीराम सुबह से ही किसी काम पर गए थे, दोपहर में आने को कह गए थे पर अभी नहीं आए थे।

× × ×

दोनों मित्रों को बातें करते हुए बहुत कुछ समय बीत चुका था इतने में रजनी बोल उठे ! "उठो जी वीणा ही बजे !"

"अब इस समय कौन बजावे ?" सुरेन्द्र ने कहा !

"वाह ! फिर आखिर लाए ही क्यों थे ! अभी नहीं तो कब ?"

इतना कहते हुए रजनी उठ पड़े और सुरेन्द्र को भी हाथ पकड़ कर उठा ही दिया—दोनों ही ज़मीन पर लगे हुए बिस्तर पर बैठ गए—सुरेन्द्र ने वीणा उठाली और अपनी वही चीज़ "श्याम तोरी छबि पर बलि बलि जाऊं" अलापने लगा!

सुधा भी इस समय सोने लगी थी पर वीणा के स्वर ने उसकी आंखें खोल दीं। उसने अपने जीवन में पहले ही पहल यह सुरीली ध्वनि सुनी थी। कुछ देर तक तो उसी कोठरी में लेटे ही लेटे सुनती रही—पर वीणा के स्वर ने सुधा को ऐसा मुग्ध कर दिया कि ज़्यादे वहां ठहर भी न सकी और द्वार के कमरे की ओर बढ़ी। उसका मन यह जानने के लिए बड़ा उत्सुक था कि 'यह स्वर है काहे का!' पर अब भी वह कमरे में जाते हुए सकुचाती थी! उसने अन्दर से ही झांका—सुरेन्द्र के हाथ में वीणा देखा—देखा तो उसने आज पहली ही बार था पर नाम जानती थी क्योंकि प्रायः रजनी कहा करते थे कि "सुरेन्द्र वीणा में बड़ा निपुण है।" यह राग सुधा को बहुत ही अच्छा लगा—पर क्या वह वीणा का ही राग था जिसे सुनने के लिए वह अधीर हो उठी—नहीं उसके हृदय को अपनी ओर खींचने की शक्ति उस वीणा में न थी वरन् थी सुरेन्द्र के कण्ठ से निकले हुए मधुर स्वर में! सुरेन्द्र का वह स्वर सुधा को अपनी ओर पूर्ण

शक्ति से खींच रहा था—सुरेन्द्र के कण्ठ स्वर से सुधा की हृदय वीणा ने अपना स्वर मिला दिया—वह निनिमेष नेत्रों से उस ओर देखने लगी! और सोचती रही! यह कितने सुन्दर और गुणी हैं—क्या इनकी तुलना किसी और से की जा सकती है? इनका रूप इतना मनमोहक! इनका हृदय कितना सरस और उदार होगा! सुधा स्वयम् बड़ी सुन्दर थी! उसे अपनी सुन्दरता पर गर्व था। पर आज? उसने सुरेन्द्र की सुन्दरता के सन्मुख अपने को पराजित पाया—अपने हृदय की ओर ध्यान दिया तो वह भी·····! सुधा इस समय भूल गई कि वह किस परिस्थिति में है—और अपने लिए क्या कर रही है? सुरेन्द्र बाजा बजा ही रहा था कि रजनी ने सुधा को पुकार कर कहा "सुधा! एक गिलास पानी तो पिलाओ!" सुधा को यह बात अच्छी तो न लगी क्योंकि वह इस समय कुछ और ही सोच रही थी पर पानी लेकर कमरे में चली गई और रजनी को देने लगी। रजनी ने सुरेन्द्र की ओर संकेत कर दिया—सुधा ने वहीं खड़े खड़े सुरेन्द्र की ओर हाथ बढ़ा दिया—और उसने पानी ले लिया। पानी लेते समय सुरेन्द्र की आंखें सहसा सुधा की ओर उठ गईं! फिर भला आंखें चार होने में क्या देर? सुधा की आंख शर्म से झुक गईं! वह जैसे ही अन्दर जाने को हुई रजनी बोल उठा:

"यहीं क्यों न बैठो सुधा ! देखो तो सही क्या बज रहा है ?"

सुधा सकुचती हुई बैठ गई ! सुरेन्द्र के लिए यह सौभाग्य का समय था, क्योंकि उसने थाली लाते समय जिसे देखा था उसे फिर देखने के लिए व्याकुल था।

सुरेन्द्र का मन अब वीणा बजाने में लग नहीं रहा था ! वह पानी देते समय की लज्जा भरी चितवन सोच रहा था ! फिर भी वह किसी प्रकार वीणा बजा ही रहा था क्योंकि उसे मालूम था कि सुधा वहां तभी तक थी जब तक वीणा बज रही थी ! सुरेन्द्र बहुत ही पवित्र विचार के थे ! पर पूर्वत् विचार आज उन्हें धोखा दे रहे थे ! वह बार बार सुधा के मुख कमल की ओर देख रहे थे।

अन्त में वीणा को एक किनारे रख ही दिया !

रज०—"बस हो गया ?"

सु०—"कबसे तो बज रहा है—अब इच्छा नहीं।"

बाजा बन्द होना था कि सुधा उठ कर अन्दर चली गई !

रज०—"अच्छा सुरेन्द्र चलो कहीं घूम आवें ! बाबू जी भी अब तक नहीं आए, केवल कल ही की तो छुट्टी है !

सु०—"कहां चलोगे ?"

रज०—"कहां क्या भाई! कुछ तुम्हारा शहर थोड़े ही है जो पार्क की गश्त हो। यहां तो खेत ही पार्क है—हां कुछ दूर पर एक बाज़ार मिलेगी!"

दोनों ही बाज़ार की ओर चल दिए—सुधा घर के प्रबन्ध में लग गई! इतने ही में धनीराम भी आगए! इस समय उनके आने से सुधा को सदा की भांति हर्ष न हुआ क्योंकि उसकी आज़ादी छिन रही थी! पर धनीराम ने कपड़े उतारते हुए कहा "सुधा खाना जल्दी बनाना हमें नौ बजे की गाड़ी से ज़रा बाहर जाना है!" इस वाक्य ने सुधा की दशा बदल दी पर उसने प्रगट न करते हुए कहा!

"आज सुबह भइया भी तो आए हैं, कल तीसरे पहर चले जायेंगे!"

धनी०—"अच्छा! कहां हैं?"

सुधा०—"कहीं घूमने गए हैं, आते ही होंगे!"

धनीराम रजनी की प्रतीक्षा में बाहर जाकर बैठ गए! कुछ समय बाद रजनी के साथ साथ सुरेन्द्र का भी आना देख कर वह बहुत प्रसन्न हुए। वह सुरेन्द्र को भी रजनी से कम नहीं मानते थे!

× × ×

सुधा खाने से निपट कर धनीराम का सामान ठीक

करने लगी। इधर धनीराम अपने कमरे में रजनी को साथ ले जाकर कुछ ज़रूरी बात करने लगे!

रजनी को शादी का विषय कुछ अच्छा न मालूम हुआ क्योंकि वह इस सम्बन्ध को पसन्द नहीं करता था—पर धनीराम को यह सम्बन्ध ऐसा लगा मानो पड़ाव मार रहे हों—तभी तो आज ही रात की गाड़ी से जाकर सब तय तोड़ कर आना चाहते हैं! पर रजनी आक्षेप भी क्या करता—इस मामले में वह उसकी बात पर ध्यान नहीं दे सकते थे और यही हुआ कि रजनी को अपने विचार प्रगट करके निराश होना पड़ा!

× × ×

धनीराम की ट्रेन चली जाने के बाद दोनों मित्र आकर उचित स्थान पर सो रहे! सुधा भी अपने कमरे के सामने दालान में सोने के लिए लेट रही! पर उसे नींद कहां? उसके लिए तो मानों रात ही नहीं हुई। दो बज गए पर उसकी आंख तक न लगी—वह अपनी चारपाई पर पड़े पड़े भांति भांति के कल्पना कर रही थी—उसके नेत्रों के सामने दोपहर की घटना के सारे चित्र खिंच रहे थे। उसे वही सुरीली ध्वनि सुनाई देती थी। सुरेन्द्र का वह गाना वह बार बार दोहरा रही थी! कभी उसे याद आती थी वह बीणा जिस पर सुरेन्द्र की उंगलियाँ बड़ी शीघ्रता से

चल रही थीं! उसके जी में आया वह वीणा लेकर स्वयम् भी वैसी सुरीली ध्वनि निकाले! पर वह पावे कहां? ज़रा देर बाद उसने न जाने क्या सोचा और द्वार के सामने जाकर देखा-कमरे में केवल सुरेन्द्र थे—रजनी गर्मी से परेशान होकर द्वार के तख्त पर आ डटे थे! वह कभी तो उस कमरे तक जाने का विचार करती और कभी सुरेन्द्र के जगने के भय से ठिठुक जाती—परन्तु मनुष्य की इच्छा बड़ी प्रबल होती है! उसके सामने तमाम और शक्तियों को नतशर होना पड़ता है। वही दशा आज सुधा की थी। गांव की एक सीधी-सादी और भोली लड़की होकर भी प्रेम के हवा के झोंके में वह चली!

आगे क्या होगा इसका उस समय भला किसी को ध्यान कब रहा? अन्त में वह दबे पैर जाकर कमरे में खड़ी हो गई और निर्निमेष नेत्रों से सुरेन्द्र को देखती रही! इधर रजनी के जगने का भय भी था! उसने चुपचाप मेज पर से वीणा उठा कर देखने का प्रयत्न किया—साथ ही साथ विचार था—सुरेन्द्र न जगें—पर वहां जगता कौन? कोई सोता भी तो हो? सुरेन्द्र तो सुधा से भी अधिक चिन्ता में थे! वह सोचते थे—छुट्टी भी अधिक नहीं है जो कुछ दिन और रहता। रजनी के अनुरोध से सुधा सुरेन्द्र से एकाध शब्द बोल भी चुकी थी! वह उन शब्दों को

सोच ही रहे थे कि सुधा के पैर की आहट पाकर आश्चर्य से आंख बन्द करली।

सुधा वीणा देख ही रही थी कि सुरेन्द्र ने आंखें खोल दीं। सुधा की आंखें शर्म से झुक गईं और कुछ भयभीत भी हुई। वह वहां से चलने को हुई कि सुरेन्द्र ने उसे रोक लिया। वह कुछ घबड़ा उठी और स्त्री सुलभ लज्जा के साथ चुपचाप नीची आंखें किए खड़ी रही!

"क्या तुम्हें वीणा बहुत अच्छी लगी?" सुरेन्द्र ने पूछा।

अचानक यह प्रश्न सुन कर सुधा पत्थर की मूर्ति की तरह खड़ी हो गई। उसके हृदय में एक तूफान उठ रहा था और वह उसे शांत करने के लिए अपनी पूरी शक्ति लगा रही थी।

"मौन क्यों हो सुधा", सुरेश ने फिर कहना शुरु किया। "क्या मैं इस योग्य भी नहीं कि तुमसे कुछ बातें कर सकूं। तुम मुझे नीच अवश्य समझती होगी पर हृदय कुछ बातें करने के लिए विवश कर रहा है। अगर मुझसे कुछ धृष्टता हुई हो तो मुझे क्षमा करो।"

सुरेन्द्र की आंखें सजल थीं। वह अपने हृयद के सच्चे भाव को सुधा के समाने रखने के लिए व्याकुल था। सुधा को भी आंसू बहाते देख वह अधीर हो उठा।

"सुधा, क्या मैंने अपने शब्दों से तुम्हें दुख पहुँचाया," सुरेन्द्र ने नम्रता से कहा। "क्षमा करो इस अभागे मूर्ख को।"

सुधा अपने अश्रु लुटाने में व्यस्त थी। वह कुछ कहना चाहती थी पर शब्द निकालने की समता ही उसमें न थी।

"तुम क्यों रो रही हो, बोलो न सुधा," सुरेन्द्र ने कुछ घबड़ाहट के साथ कहा। "यह दुख तो मुझसे सहन नहीं होता।"

सुधा ने बोलने का प्रयत्न किया। टूटे फूटे शब्दों में वह जो कुछ भी कह सकी वही सुरेन्द्र के लिए आवश्यकता से अधिक था। अनुकूल उत्तर की खुशी में सुरेन्द्र ने सुधा को अपने गले का हार निकाल कर पहना दिया।

"सुधा! इस हार में हमारे जीवन की हार है और जीवन की हार में प्रेम की जीत," माला पहनाते हुए सुरेन्द्र ने कहा।

इतने में दरवाज़े पर आहट हुई! दोनों चौकन्ने हुए।

"सुधा! अपने और हमारे जीवन के इस दृश्य को न भूलना! बस जीवन में यही हम लोगों के मिलन का प्रथम और अन्तिम बार है!" सुरेन्द्र ने सुधा को अन्दर जाने के लिए संकेत करते हुए कहा।

सुधा अन्दर आकर चारपाई पर पड़ रही और बीती बातों को एक एक करके सोचने लगी! इधर सुधा के जाने के बाद ही

रजनी ने कमरे में प्रवेश किया—घड़ी की ओर देखा, तीन बज रहे थे ! चुपचाप चारपाई पर लेट रहा। और सुबह होते ही दोनों मित्र अपनी नित्य क्रिया से निवृति होकर पहली ही गाड़ी से चलने को प्रस्तुत हो गए ! सुरेन्द्र किस दिल से वहां से चले पाठकगण स्वयम् समझते होंगें !

× × ×

ट्रेन पर—

रज०—"तुम्हें यहां ज़रा भी अच्छा न लगा होगा क्योंकि यह तो बिलकुल देहात है !

सु०—"खूब कही ! अरे शहर में देहात के प्राकृतिक दृश्य कहां मिलें !"

रज०—"हां यहां का प्रकृतिक दृश्य तो अवश्य अच्छा है !"

सु०—"यही तो ! यहां की सरलता व स्वाभाविकता ही तो चित्ताकर्षक है"—इस समय भी सुरेन्द्र सुधा की सरलता का मनन कर रहा था !

रज०—"अच्छा ईश्वर ने चाहा तो तुम्हें यहां जल्दी ही आना होगा।"

सु०—"यह क्यों कुछ विशेष आवश्यकता !"

रज०—"हां पिता जी से पता चला कि सुधा का व्याह करीब करीब ठीक ही है।"

सु० — "अच्छा ! फिर तो बड़े हर्ष की बात है ! कहां ठीक हुई ? घर कैसा है ?" सुरेन्द्र ने इस समय अपने भाव छिपाने में पूरी चतुरता से काम लिया !

रज०—"कानपूर में ठीक हुई है। कहते थे घर के लोग धनाढ्य हैं, लड़का भी अच्छा ही बतलाते हैं; पर हमें कुछ जचा नहीं।

सु०—"यह क्यों ?"

रज०—"यही कि लड़के की उम्र सुधा से काफ़ी ज़्यादे है !

सुरेन्द्र इसे सुन कर और भी दुखी हो उठे और बोले :

सु०—"तो तुम उन्हें रोक क्यों नहीं देते ?"

रज०—"रोक क्या दें, मानें भी ! जानते हो पुराने विचार के आदमी हैं ! धन ज़्यादे देख लें बस !"

सु०—"सम्बन्ध कुछ अच्छा तो नहीं है !"

रज०—"पर हो ही क्या सकता है ? सच तो यह है कि यदि मेरी चलती तो जात पांत कुछ न देखता और सुधा का सम्बन्ध तुम्हारे ही साथ कर देता ! कह कर रजनी हँस पड़ा। सुरेन्द्र ने इस शरारत पर रजनी के एक मज़ाक

भरी चपत रसीद की ! कुछ ही देर बाद लखनऊ स्टेशन भी आ गया ।

× × ×

सुधा के सगाई के कुछ ही दिन शेष हैं पर कठिनता इस बात की है कि उसका स्वास्थ्य दिन प्रति दिन क्षीण होता जाता है । कोई भी औषध अपना काम नहीं करती । धनीराम, भी चिन्तित हैं पर कुछ कारण समझ नहीं पाते ।

सुधा दिन रात अनेक प्रकार की बातें सोचा करती है । कभी उस दिन का मिलन सोच कर हँस देती है । पश्चात ही दुबारा न मिल पाने की शंका से रो पड़ती है, कभी अपने किए पर पश्चात्ताप करती है ! ज्यों ज्यों सगाई के दिन निकट आते थे उसका एक एक क्षण भार सा बीत रहा था । वह अपनी सगाई को जीवन का एक बहुत बड़ा पाप समझती थी । वह यही सोचा करती थी कि जब हृदय एक का हो चुका तो दूसरे की शरण कैसे स्वीकार करेगा—उन चरणों का ध्यान छोड़ कर किसी दूसरे के चरणों में मन कैसे बहलाएगा ? यही सब सोच कर अपने जीवन को शीघ्र नष्ट करने में लगी रहती थी !

× × ×

सुरेन्द्र की दशा भी कुछ विचित्र था । वह यह जानते

हुए भी कि सुधा का व्याह किसी दूसरे से हो रहा है सन्तोष नहीं कर पाता था ! उसका मन अब पढ़ने लिखने में नहीं लगता था—फिर भी वह अपने भाव छिपाने में बड़ा चतुर था ! रजनी भी उसकी दशा को नाप न सके।

सुरेन्द्र रजनी की होस्टल में बैठे बैठे सुधा की बीमारी के विषय में बात कर रहे थे इतने ही में रजनी के नाम घनीराम का पत्र आ पहुंचा, जिससे मालूम हुआ कि सुधा की दशा शोचनीय है ! रजनी दूसरे ही दिन आठ दिन की छुट्टी ले चल दिया—सुरेन्द्र भला कब रुकता, पर विवश था !

× × ×

सुधा रोग शय्या पर पड़ी थी। ज्वर काफ़ी था। उसकी सखी भानू उसके पंखा कर रही थी। अब भी सुधा अपने विचारों में व्यस्त थी—भानू सुधा की दशा देखकर अश्रु बहा रही थी पर सुधा से छिपा कर। अचानक सुधा की नज़र पड़ ही गई !

सुधा०—"तुम रो क्यों रही हो ?"

भानू०—' नहीं तो, रोऊंगी क्यों"—आसू पोछती हुई !

सुधा०—"नहीं तुम छिपाती क्यों हो ?"

भानू०—"यही सोच रही हूं कि तुम्हारी व्याह के कुछ दिन भी नहीं रहे ! पर तुम्हें कुछ लाभ नहीं !"

सुधा के मुख पर एक मन्द मुस्कान दौड़ गई। फिर कुछ देर चुप रहने के बाद बोली—

सुधा०—"देखो भानू! जीवन में व्याह केवल एक ही बार होता है न?"

भानू०—"ज़रूर इसीलिए तो तुम्हें भी उस दशा में देखने की इच्छा है!"

सुधा०—"अच्छा भानू! तो तुम चिन्ता न करो वरन् हमारे बाद यह सोच कर सन्तोष करना कि सुधा का व्याह हो चुका था—सुधा अपने को किसी पवित्र चरणों में अर्पित कर चुकी थी।"

भानू०—"सखी यह सब तुम क्या बक रही हो—अच्छा अधिक न बोलो, ज्वर बढ़ जायगा?" वह समझी सुधा ज्वर की तेज़ी में सब कुछ कह रही है!

सुधा०—"भानू! विश्वास करो! हमने अबतक तुमसे छल किया और अब कुछ कहने के लिए न शक्ति ही है न समय!" इस बार भानू आश्चर्य में पड़ गई।

इतने में ही रजनी सुधा के कमरे में प्रवेश हुआ। दोनो भाई बहनों में अपूर्व प्रेम था। दोनों आमोद प्रमोद किया करते थे, उम्र में भी अधिक अन्तर न था! सुधा ने रजनी की ओर देखा और रजनी ने सुधा की ओर

—दोनों के हृदय हिल उठे; अश्रु अधिकार से बाहर हुए। रजनी बहुत समय तक सुधा को समझाता रहा और फिर बाहर चला गया। सुधा को आशा थी कि कदाचित् रजनी के साथ सुरेन्द्र भी आ जांय और एक बार फिर दर्शन हो जांय ! पर नहीं आज वह आशा भी चूर हुई ! इस समय सुधा के दिमाग़ में उस मिलन के समय का प्रथम और अन्तिमबार का वाक्य अपनी पूरी शक्ति के साथ टक्कर मार रहा था ! वह बार बार सोचती थी "वास्तव में सुरेन्द्र ने सच कहा था—अब उन चरणों के दर्शन की आशा नहीं !" यह सोचते सोचते उसने अपने सिरहाने रक्खी हुई डिबिया से सुरेन्द्र का दिया हुआ हार निकाला और एक बार उसे अपने मस्तक से लगा कर सुरेन्द्र के कहे हुए शब्दों को याद किया फिर अपनी जेब में रख लिया !

कुछ देर बाद रजनी ने आकर टेम्प्रेचर लिया। ज्वर १०६ से कुछ ज़्यादे था—तत्काल ही डाक्टर फिर बुलाए गए ! जिस समय डाक्टर सुधा के नब्ज़ की परीक्षा कर रहा था, सभी लोग उसके मुंह से निकले हुए शब्दों को सुनने की प्रतीक्षा में थे !

डा०—बाहर निकलते हुए ! "रोगी की दशा ! अच्छी तो नहीं है—दवा दीजिए शायद काम कर जाय !" रजनी और धनीराम सुन कर निर्जीव से हो गए !

घनी०—"डाक्टर साहब ! इस बिना मां की लड़की को कितने लाड़ प्यार से पाल कर इतना बड़ा कर पाया है। क्या वृद्धावस्था में यह भी देखना होगा ?"

डा०—सुख-दुख, मनुष्य के हाथ की बात नहीं, वरना कभी मनुष्य पर दुःख पड़े ही नहीं। देखो तुम लोग ज्यादा घबड़ाओ नहीं, हम क्या कर सकते हैं ! ईश्वर को याद करो वही सहायता करेगा !"

रज०—"अच्छा डाक्टर साहब यदि हालत कुछ भी न सुधरी तो कष्ट करिएगा !"

डा०—"ज़रूर ! इत्तला करना !"

रजनी डाक्टर को विदा करके सुधा को दवा देने आया—सुधा कुछ बक रही थी। "तो बस अब नहीं आओगे ! हां अब न मिलना, तुम्हीं ने तो कहा था कि यह जीवन के मिलन का प्रथम और अंतिम बार है।"

रजनी और घनीराम एक दूसरे का मुंह देखने लगे ! उस जगह अड़ोसी पड़ोसी जो भी थे सबों ने यही समझा कि सरसामी हालत है ! पर रजनी ने इन धूमिल पृष्ठों को भी बहुत कुछ पढ़ लिया और मन ही मन पश्चात्ताप करने लगा ! फिर रजनी सुरेन्द्र के कहने के अनुसार उन्हें तार देने चला

गया ! सुधा उसी तरह बकती रही ! वापस आने पर रजनी ने सुधा की दशा और भी गिरी पाई। जल्दी से डाक्टर बुला लाया ! रात के ८ बज रहे थे ! डाक्टर सुधा की नब्ज़ की गति ढूँढ़ रहा था और सुधा अपनी सांस ढूँढ़ रही थी ! दीपक बुझ रहा था। सुधा के अधरों में एक अन्तिम रेखा दौड़ गई। सहसा उसके मुंह से फिर वही टूटे फूटे शब्द निकल पड़े "हां··· प्रथम···और···अ··न्तिम···वा···र······!" इस वाक्य के साथ साथ उसका जीवन नाटक भी समाप्त हो गया।

× × ×

सुरेन्द्र का दिल आज दिन भर धड़कता रहा—किसी काम में मन न लगा—चारपाई पर लेटते ही आंख लगी तो क्या देखा—सुधा एक सफ़ेद सारी परिधान किए सामने खड़ी है ! बाल खुले हैं और एक मन्द मुसकान के साथ कह रही है—प्यारे सुरेन्द्र ! तुम मुझसे इस जीवन में फिर न मिले—यह निर्दयता, निष्ठुरता तुमने कहां पाई ? अच्छा तुम खुश रहो पर याद रखना वही 'प्रथम और अन्तिम बार···!' बाहर तार वाले ने आवाज़ दी। वह लड़खड़ाते हुए उठा और किसी प्रकार तार हाथ में लिया !

तार हाथ से गिर पड़ा—वह एक पागल की भांति स्टेशन

की ओर दौड़ पड़ा ! वहां कुछ देर प्रतीक्षा करने के बाद ट्रेन मिल गई ! बैठ तो गया पर होश कुछ सही न था ! एक एक क्षण न जाने कैसे काट रहा था—कभी उठकर टहलने लगता था कभी खिड़की के पास खड़ा हो जाता था । धीरे धीरे सुबह हो चली थी—अच्छा उजियाला हो गया था । वेहरू गांव के स्टेशन के पहले ही जंगल की तरफ़ सुरेन्द्र को एक चिता जलती हुई दिखाई दी । उसे ऐसा मालूम हुआ मानों कोई कह रहा हो "यही सुधा की चिता है, उसी की जिससे जीवन में फिर न मिल सके ।" वह चलती गाड़ी से कूद पड़ा । चोट काफी आई पर उन्मादे सुरेन्द्र के पैर न रुके । वह दौड़ता हुआ चिता की ओर चलता जाता था । रजनी ने तुरन्त उसे पहचान लिया—पर वह न पहचान सका । उसे ऐसा मालूम होता था कि बादल गरज कर कह रहे हैं 'प्रथम और अन्तिम बार !' वृक्ष एक दूसरे से कह रहे हैं 'प्रथम और अन्तिम बार!' वहां की आंधी में भी यही आवाज़ है "प्रथम और अन्तिम बार।" सुधा की चिता की धधक भी यही पुकार उठती है "प्रथम और अन्तिम बार !"

"अपने फूल के लिए"

"बाबू जी ! आपकी बांसुरी—!"

माधव ने घूम कर देखा—बाइसिकिल के पीछे एक युवती कोछ में कुछ थोड़े से फूल लिए और हाथ में बाँसुरी लिए दौड़ी चली आ रही है ! माधव उसी जगह बाइसिकिल से उतर पड़े और उस युवती की ओर चकित होकर देखने लगे। युवती को दो ही चार मिनट तो माधव तक पहुँचने में लगे ही पर वह जितना ही निकट जाती थी अपने शरीर का वस्त्र संभालती जाती थी ! अधिक निकट आने पर उसने अपनी आंखें नीची कर लीं और बांसुरी को माधव की ओर बढ़ा दी। माधव ने एक बार बांसुरी की ओर देखा और फिर उस युवती को।

"तुम्हें मेरे कारण बड़ा कष्ट हुआ, कहाँ पर गिरी थी ?

"इसमें कष्ट की क्या बात ? यहीं कुछ दूर पर तो गिरी थी !"

"लेकिन मेरी ही असावधानी से तो—!"

"ऊँह होगा !"

"शायद और किसी को मिली होती तो वापस भी न करता।" माधव ने उसके हाथ से बांसुरी लेते हुए कहा।

"हमने तो इसे आपकी जेब से गिरते देखा था।"

"और तुम यहां अकेले—?" इतना कहकर माधव उसका मुंह देखने लगे!

"हां! मैं यहां अकेले रोज ही आती हूँ।"

"क्यों?"

"इसीलिए।" उसने अपने कोछ के फूल माधव को दिखा दिए।

"यह तो कुछ मेरे समझ में न आया। साफ़ साफ़ क्यों न कहो?"

"इस अभागे पेट को पालने के लिए!"

माधव ने देखा—युवती के स्वर में वेदना थी, करुणा थी और थी एक दीर्घ निःश्वास। माधव का हृदय भी करुणा से भर गया। उसने बड़े ही नम्र भाव से पूछा—

"क्या तुम्हारा और कोई भी नहीं है?"

"है क्यों नहीं, एक बूढ़ी मां है!"

"और तुम्हारा ब्याह·······?"

"इसे पूछ कर क्या करिएगा ?" युवती की आँखें सजल हो उठीं। माधव ने उसके भूतकाल का इतिहास उन आंसुओं में पढ़ लिया।

"क्या तुम्हारे पति……!" माभव ने सकुचते हुए कहा।

युवती कुछ न बोली !

"बोलती क्यों नहीं ! यदि मैंने कुछ अनुचित कहा हो तो क्षमा करो।"

"नहीं ! कुछ भी अनुचित नहीं, मैं अवश्य अभागिनी हूँ !" "अच्छा अब जाती हूं। शाम हो गई।"

"जाती हो ?"

"जी हां।"

"पर नहीं मालूम क्यों तुम्हारा पूरा परिचय जानने की इच्छा है !"

"व्यर्थ है।"

"व्यर्थ ही सही फिर भी—।"

"पर मुझे देर होती है !"

"तो क्या कल फिर फूल लेने आओगी !"

"अवश्य।"

"आशा है कल अपनी अधूरी कहानी पूरी करोगी !"

"कदाचित—!"

"नहीं, ज़रूर पूरी करना।"

"अच्छी बात।"

"अच्छा अपना नाम बतादो !"

'क्या करोगे !"

"कुछ तो नहीं।"

"फिर क्या होगा।"

"नहीं अब कह दो।"

"मेरा नाम—'प्रभा' है ! अच्छा अब बस।" इतना कह कर वह अपने घर की ओर चल पड़ी।

माधव बांसुरी हाथ में लिए और अपनी बाईसिकिल लेकर नित्य की भांति आज भी उसी नदी के कूल पर जा बैठे ! वह रोज़ ही सुबह के समय यहीं आकर घन्टे दो घन्टे शीतल वायु पान करते थे ! अपनी बांसुरी लेकर एक-आध तान भी छेड़ा करते थे ! पर आज वह बात नहीं ! आज उनके हृदय में शान्ति नहीं है, उल्लास नहीं है, आनन्द नहीं है ! वरन् है, करुणा, दया और एक प्रकार की वेदना ! माधव ने वहां पहुँचने पर बांसुरी फिर जेब में रख ली ! और उस बीते हुए दृश्य को मनन करने लगे ! माधव के सामने वह नदी, शुभ उज्ज्वल,

निर्मल तथा चर्चंल तरंगों के थपेड़ों से डोल रही थी। दरिया की चिरसंगिनी इन लहरों के व्यवहार में विचित्र आकर्षण था! कितनी ही तरणी उन लहरों के साथ खेल रहीं थी! परन्तु वे तरंगे जितनी ही स्वतंत्र थीं उतनी ही वह तरणियां पराधीन—! पर उन जल तरंगों की वह भावभंगी, वह चंचलता, वह इठलाहट माधव की गम्भीरता और तल्लीनता में आज टक्कर नहीं लगा पाती—उसके मस्तिष्क और हृदय के बीच एक नवीन प्रकार की लहरें उठ रही हैं। और उन तरंगों के साथ साथ भी एक तरणी इठलाती है पर वह स्वतंत्र है! कभी कभी हृदय उमड़ पड़ता था और तरणी भी उछल पड़ती थी पर साथ ही साथ विचारालिंगन भी दौड़ पड़ता था! वह सोच रहा था युवती कितनी गम्भीर है, कितनी शान्त है! और उसकी सहनशीलता कैसी प्रसंशनीय योग्य है! और उसका दुःख…? भगवान्!! क्या वह इस योग्य थी कि इस करुण दशा में वन वन में अकेली फिरे? और किस लिए? अपने उदर पोषण के लिए? आह! याद आगए उसके वह सजल नेत्र……! कितनी करुणा और दुःख का भार वे लिए हैं! क्या ईश्वर का यही न्याय है? क्या विधाता का विधान यही है? सुनते हैं उसके पास बहुत दया है, कृपा है, सुख और सम्पति है! फिर ऐसे ऐसे अनाथ इस संसार में क्यों? जब उसके

यहां ऐसी दुखियों के लिए दया और करुणा नहीं है तो रूप की इतनी अधिकता क्यों ? उस बेचारी के लिए इतना रूप ! यह लावण्य ! जिस उपवन का माली ही न हो उसमें फिर बसन्त किस काम का ? जब आल ही न हो तो फिर गुलाब का खिलना व्यर्थ ही है ? इन्हीं सब विचारों में माधव लीन थे इतने ही में किसी ने आवाज़ दी।

"क्या हो रहा है ? आज अपनी बांसुरी नहीं लाए ?"

माधव का ध्यान भंग हुआ सामने देखा—उन तरल तरंगों के साथ साथ उमेश भी थपेड़े मारता हुआ चला आ रहा है।

"लाया तो हूँ।" माधव ने एक बनावटी मुस्कराहट के साथ कहा।

"फिर—बजी क्यों नहीं ?"

"यों ही !"

"अच्छा फिर आओ—।",

"नहीं—अब फिर किसी दिन। देर हो रही है अब जाता हूँ" माधव ने उठते हुए और चारों ओर देख कर कहा।

"क्यों, आज तो छुट्टी है।"

"छुट्टी तो ज़रूर है पर तमाम और काम है।" इतना

कह कर माधव वहां से चल दिए। उमेश फिर उन्हीं लहरों के साथ कल्लोलें करने लगा।

× × ×

माधव की बाईसिकिल की आवाज़ सुनते ही प्रभा एक फूल हाथ में और कुछ कोछ में लिए आ पहुँची। उसने अपने हाथ का फूल आते ही माधव की ओर बढ़ाया। माधव ने फूल को फौरन ही ले लिया और बाईसिकिल वहीं खड़ी करके पास ही पड़े हुए एक टूटे वृक्ष के तने पर बैठ गया। प्रभा पास ही ज़मीन पर बैठ तो गई पर एक प्रकार की लज्जा से दबी थी।

"हां तो अब कहो, प्रभा!" माधव ने कुछ गम्भीर भाव से कहा। प्रभा की मुद्रा भी गम्भीर और करुण थी।

"क्या कहूं?"

"वही अपनी दुख भरी कहानी।"

"लेकिन दुख भरी कहानी तो अच्छी नहीं होती।"

इसी लिए तो सुनूंगा! हां तो तुम्हें वैधव्य अवस्था में कितने दिन बीत चुके?"

"यही नौ दस वर्ष सुनते हैं।"

"सुनते हैं?" माधव चकित हुए!

"हां, क्योंकि मेरा व्याह बचपन में ही हुआ था और व्याह के चार ही महीने बाद ,, ...।"

"तब से तुम इसी प्रकार फूलों द्वारा अपना जीवन बिताती हो ?"

"नहीं यह काम तो अभी छै महीने से शुरू किया है। अभी तक मेरी मां नौकरी करके मुझे खिलाती थीं पर अब उनका शरीर बहुत ही निर्बल पड़ गया है। तब से मैं इन्हीं फूलों का हार बना बना कर अपनी छोटी बहन को दे देती हूं। वह उन्हें बेच कर कुछ पैसे ले आती है !"

माधव मूर्ति की भांति बैठे सब सुनते रहे—फिर एक दीर्घ निश्वास ली, उसके बाद अपने फूल को फिर देखा ! कुछ क्षण तक दोनों चुप रहे। प्रभा उठकर चलने को हुई।

"ठहरो प्रभा !"

प्रभा रुक गई। माधव ने अपनी जेब से दो रुपया निकाल कर प्रभा की ओर बढ़ा कर कहा—"क्या इसे स्वीकार करोगी ?"

"आप मेरे लिए इतना कष्ट न उठाइए ! हम इस योग्य नहीं।"

"लेकिन प्रभा यह तो तुम्हारे फूल का पूरा मूल्य भी नहीं है !"

"फूल तो एक पैसे का भी नहीं।"

"नहीं प्रभा! बात मान लो! हमें बड़ा दुख हो रहा है! और हम किस योग्य हैं!"

"अब आपको फूल कभी न दूंगी।" प्रभा ने कुछ लज्जित होकर और रुपए लेते हुए कहा।

"ऐसा तो न कहो प्रभा! हम तुमसे रोज़ ही फूल पाने की आशा रखते हैं, तुम्हें इतना संकोच क्यों होता है?"

प्रभा कुछ न बोली!

"अच्छा तो रोज़ फूल दिया करोगी न?"

"इसी तरह—?"

माधव हँस पड़े और कहा "हां!"

"नहीं!" इतना कह कर प्रभा फिर अपने काम को चली गई!

× × ×

अब प्रभा नित्य ही सुबह माधव को एक अच्छा सा फूल लाकर देती है। अब उसके हृदय में माधव के प्रति अपूर्व श्रद्धा है! माधव के हृदय में भी इस ग्यारह महीने की मुलाक़ात ने बहुत प्रभाव डाला है! इधर जब से प्रभा की मां भी प्रभा को असहाय करके स्वर्ग को चल दी, तब से माधव उसके जीवन का

दुख कम करने की पूरी चेष्टा किया करता है। अब प्रभा को फूल बेच कर अपना पेट पालने की आवश्यकता नहीं पड़ती फिर भी मनोरंजन के लिए वह फूल तोड़ा अवश्य करती है।

× × ×

"यह क्या कहीं से पत्र आया है ?" प्रभा ने माधव के जेब में खुसे हुए पत्र को निकालते हुए कहा ! माधव ने कुछ भी उत्तर न दिया ! पर प्रभा ने पत्र को पढ़ ही लिया !

"तो तुम घर क्यों नहीं जाते जो ऐसे पत्र आते हैं ?"

"घर न जाने का कारण ? क्या बताऊं ?"

"क्यों, क्या कुछ विशेष बात है !"

"हां ! मैं समझता हूँ कि पिता किस बात के लिए आतुर हैं। लेकिन मैं......!" माधव पूरी बात न कह सका।

"यह क्या ? हम समझ न सकीं !"

"कुछ नहीं ! इस फेर में न पड़ो !" माधव ने लापरवाही से कहा !

"तुम्हें बतलाना होगा !"

"यही शादी-ब्याह के पीछे पड़े हैं।"

"फिर तो बड़ी खुशी की बात है।"

"तुम तो ऐसा न कहो प्रभा ! तुम्हें याद होगा कि जिस

दिन तुम्हारी मां मरी थीं, तुम्हें उस असहाय अवस्था में क्या कह कर समझाया था।"

"याद है। पर यह तो समझाने का तरीक़ा था!"

"नहीं प्रभा, तरीक़ा नहीं, मेरा निश्चय था।"

"संसार क्या कहेगा?"

"संसार कुछ भी कहे, पूछो कर्त्तव्य क्या कहता है?"

"नहीं माधव, तुम हँसी खुशी घर जाओ। अपना ब्या करके अपना पूरा कर्त्तव्य करो—मैं जानती हूँ कि तुम्हारे हृदय पर भारी आघात होगा—पर माता पिता की इच्छा पर ध्यान दो। तुम पुरुष हो, इस दुर्बलता पर विजय प्राप्त करो! मैं अपने इस अभागे जीवन के लिए तुम्हें कलंकित नहीं करना चाहती। मैं एक विधवा हूं; समाज के हृदय में इतनी जगह कहां कि मुझ ऐसी अनाथों को भी सुखी देख सके! तुम्हारे निश्चय की ओर कोई भी ध्यान न देगा! हां केवल बदनाम अवश्य करेगा। तुम मेरी चिन्ता न करो। मैं अपना पालन पहले की भांति अब भी करूंगी।" प्रभा कहती जाती थी, माधव, मूर्ति की भांति बैठे सब सुन रहे थे। इतने में उनके हाथ में दो गर्म बूंद पड़ी। माधव चौंक पड़े।

"यह क्या प्रभा?"

"कुछ नहीं।" प्रभा ने रुँधे हुए कण्ठ से कहा। पर प्रत्यक्ष को बात छिपाना कठिन था। माधव के रुमाल ने प्रभा के आँसुओं का स्वागत किया। इधर माधव के आसुओं के लिए प्रभा का अंचल।

× × ×

दरवाज़े की आहट पाकर प्रभा चकित हुई। घूम कर देखा—माधव। वह सोचने लगी कि वह स्वप्न देख रही है या वास्तविक दृश्य! उसने माधव को किस प्रकार और कितने अनुरोध से समझा कर घर भेजा था। उसे आशा न थी कि माधव फिर उस टूटी झोपड़ी में आवेगा! इतने ही में माधव ने प्रभा के सामने के फूलों के ढेर में से एक गुलाब का फूल उठा लिया और उसे प्रभा के कपोलों से छुवाते हुए कहा "प्रभा!"

"माधव! तुम यहां......। इस झोपड़ी में......?"

"हां प्रभा इस झोपड़ी में .....।"

"क्यों?" प्रभा के नेत्र सजल थे!

माधव ने एक नवीन मुस्कराहट के साथ अपना एक हाथ प्रभा के कंधे पर रक्खा और दूसरे से उसकी ठोंढ़ी पकड़ कहा—

"अपने फूल के लिए, प्रभा!"

रंग की बूंदें

"क्या हो रहा है ?"

नरेश ने मानो कुछ सुना ही नहीं। बहुत सुन्दर विषय था, पढ़ने में लीन थे, तनमन की सुध भी भूले से थे ! सामने रक्खा हुआ नाश्ता भी ठण्डा हो चला था—उपन्यास का पृष्ठ पलटने की इच्छा के साथ आंखें भी डगमगाईं—देखा, कुर्सी के बगल में कुछ ही दूर पर सरोज खड़ी है। नरेश चकित होकर बोले !—

"अरे ! तुम कबसे खड़ी हो ?"

"क्यों इसकी चिन्ता कैसे हुई ! पढ़ते जाओ !" सरोज ने कुछ मुस्कराते हुए कहा।

"हां सरोज ! बहुत अच्छा विषय है, लीन तो सचमुच था, देखो—"प्रेम पथ" कैसा अच्छा विषय है ! पढ़ोगी तुम भी ?" नरेश ने पुस्तक का नाम दिखाते हुए कहा।

"हमें इतना समय कहां ? और न तल्लीनता का हुनर," कहते हुए सरोज आकर मेज के कोने पर बैठ गई और पुस्तक को उठा कर उलटने लगी !

'नहीं सरोज तल्लीनता का हुनर तो तुममें हमसे कहीं अधिक है पर अन्तर इतना अवश्य है कि हम छोटे छोटे विषय में भी लीन हो जाते हैं और तुम······" नरेश कहते कहते रुक गए। सरोज अब भी पुस्तक उलटती रही। कुछ देर चुप रहकर नरेश फिर बोले—

"सरोज! अब तुम···? किसी भाग्यशाली चरणों में ·· क्यों?" इतना कहकर नरेश निस्तब्ध हो गए। सरोज नरेश के इस वाक्य पर तिलमिला उठी और मेज़ पर किताब पटक कर बोली—

"अच्छा बस! अब रहने दो—मैं जाती हूँ तुम पढ़ो।" फिर दो कदम चल कर रुक गई और बोली—"नाश्ता न करना हो तो लेते ही जाँय, व्यर्थ में क्यों रक्खा रहे!"

नरेश समझ गए कि वह झल्ला उठी है इसलिए और तंग करने के विचार से फिर बोले—"हां हां लेती जाओ, इच्छा तो खाने की है नहीं!"

ज्योंहीं सरोज मेज़ की तरफ बढ़ी, नरेश ने उसे जाने से रोक दिया।

"मुझे जाने दो, देर होगी, खाना बनाना है!"

"क्यों सरोज क्या खफ़ा हो गईं, बात तो सच ही कही।"

"सच हो या झूठ पर मैं पूछती कब हूं !" सरोज ने रोष भरे शब्दों में कहा।

"तो अब कुछ नहीं सुनोगी ?"

"हां, यदि इसी विषय पर होगा !"

"अच्छा कुछ और कहूं ?"

सरोज कुछ न बोली। नरेश ने उस चुप में उसकी स्वीकृत को पढ़ कर कहना शुरू किया—

"अच्छा सरोज, अधिक बिगड़ो न ! यह तो तुम्हें मालूम होगा कि हम सुबह चले जायंगे क्योंकि अब छुट्टी नहीं। इस बार आने का निश्चय तो न था पर तुम्हारी मां से किए हुए वादे का विचार था और तुमसे फिर एक बार मिलने की इच्छा थी पर अब नहीं आना चाहता सरोज ! अब यहां आकर केवल दुख का बढ़ाना है और कुछ नहीं। अब हम लोगों को यही चाहिए कि अपनी पूर्वत बातों को बिलकुल भूल जांय; अपने बचपन के दिन भी भूल जांय और तुम्हें भी.....................!" कहते कहते नरेश ने सरोज के दोनों हाथ अपने हाथों में ले लिए। सरोज अब भी उसी तरह आंख नीची किए बैठी रही। नरेश फिर बोले "किन्तु सरोज ! हम तुम्हें भूल जांय ! असम्भव... असम्भव ! हां तुम अवश्य मुझे भूल जाओ क्योंकि तुम्हारे लिए

किसी की याद रखना अब पाप होगा। तुम्हें उसी का ध्यान रखना चाहिए जिसे अभी चार दिन में ....! तुम अपने कर्तव्यों को तनमन से पालन करना! यही तुम्हारा धर्म होगा और इसी में तुम्हें सुख होगा। हमें भी तुम्हें सुखी जान कर ही सुख होगा।" नरेश शायद अभी कुछ और कहते पर उन्होंने देखा कि सरोज बहुत परेशान हो रही है, और फिर उन्होंने अपना प्रसंग बदल दिया और कुछ रुक कर फिर बोले—

"अच्छा सरोज अब तुम जाओ, बस अब कुछ कह कर तुम्हें कष्ट न देंगें। और कहना ही क्या है? कल तो चले ही जांयगे।" सरोज कुछ क्षण तक उसी प्रकार निस्तब्ध बैठी रही और अपनी कमज़ोरी पर पश्चात्ताप करती रही—मन ही मन सोच रही थी 'इनसे फिर आने को कहूँ या न कहूं? परिस्थिति तो कुछ रोक रही थी फिर भी उसने अपनी पूरी शक्ति से कहा—

"क्या सच अब कभी न आओगे?"

"हां अब न आएंगे!" सरोज पर मानों किसी ने आघात किया, फिर भी उसने साहस किया।

"और होली में?" सरोज का यह वाक्य सुन नरेश के मुँह पर पसीना आगया! उसकी दबी हुई चिनगारी को उकसाने में सरोज के वाक्य ने समीर का काम किया! वह घबड़ाकर बोले—

"सरोज ! क्या कहती हो ? होली में ? ज़रा सोचो तो सही इस होली के लिए हम लोगों के हृदय में कितनी धाराएं बह रहीं थीं-? कितनी तरंगे उठ रहीं थी ? कितनी अभिलाषाएं थीं ? कह कर नरेश ने एक दीर्घ विश्वास ली। सरोज ने नरेश की ओर सजल नेत्रों से देख कर कहा—

"तो अब ·······?"

"अब ? इतनी भोली न बनो ! तुम खूब जानती हो कि हम लोगों के पहले और अब की परिस्थितियों में कितना अन्तर हो गया। हम लोगों की विस्तृत आशाओं को समाज ने कितनी निर्दयता से कुचल डाला ! यह अन्यायी समाज ने संसार के प्राणियों को दुख के चंगुल में फंसाया है ! वह आज तक किसी को सुखी न देख सका; किसी को अपनी इच्छाओं की पूर्ति का बरदान न दे सका ! वही निष्ठुर समाज हम लोगों के पथ का भी कंटक हुआ। खैर विवश हैं हम और तुम दोनों। अच्छा तो अब वह चर्चा अधिक न छेड़ो। तुम जानती हो, अच्छी तरह जानती हो कि होली के दो दिन पूर्व ही तुम एक योग्य पुरुष की········। तब हमें तुमसे होली खेलने का कुछ भी अधिकार न रहेगा।"

"क्या सच, प्रेम का अंत यों हीं होता है?" सरोज ने बड़े आर्त स्वर में कहा।

"हां, संसार को इसी प्रकार का अन्त देखने में हर्ष होता है।"

"कुछ भी हो नरेश, पर तुम्हें आना होगा !"

"ऐसा न कहो तो अच्छा हो !"

"अब क्या इतना भी अधिकार नहीं कि एक बार तुम्हें अपनी इच्छानुसार बुला भी सकूं ?"

नरेश को सरोज के शब्दों ने बुरी तरह जकड़ दिया। उसने विवश होकर कहा :

"अच्छा—कोशिश करूंगा।"

"कोशिश—नहीं प्रतिज्ञा करो," सरोज ने दृढ़ता पूर्वक कहा।

"प्रतिज्ञा ? अच्छा प्रतिज्ञा करता हूं, कि आऊंगा।"

इतने ही में कमरे में मुन्नू दौड़ता हुआ आया और बोला :

"जिज्जी चलो, तुम्हें मां बुला रहीं हैं, खाने में देर होगी।"

"रमेश ने लपक कर मुन्नू को पकड़ लिया और दोनों काठीं के बीच खड़ा करके कहा।

"कहां जा रहे हो मुन्नू बाबू ?"

"बाहर खेलनें जा रहा हूं।" उसने अपने को छुटाते हुए कहा।

"हमारे साथ नहीं खेलोगे ?"

"नहीं आप तो बहुत बड़े हैं। मैं वहां जाता हूँ।" इतना कह कर मुन्नू बाहर भाग गया। नरेश और सरोज दोनो मुन्नू की बात पर हंस पड़े फिर सरोज उठ कर चली गई। नरेश अपनी पुस्तक के पन्ने पलटने लगे, पर जो कुछ अनुभव हो रहा था वह पुस्तक के पन्नों से बिलकुल विपरीत।

× × ×

नरेश तमाम रात बीती बातों को सोचते रहे, पर वे खतम न हुईं। उसे बड़ी निराशा हुई थी, वह स्वप्न में भी कभी ऐसा विचार नहीं करता था। नरेश और सरोज दोनों बचपन के ही साथी थे। इन लोगों के पिता प्रतापगढ़ में काम करते थे। कई वर्षों तक साथ रहने से काफ़ी घनिष्टता हो गई थी। यहां तक कि इन दोनों का ब्याह भी साथ ही कर देना चाहते थे। लोग इस जोड़ी को साथ साथ खेलते देख कर बड़े सुखी होते थे और पूरा इरादा किए थे कि इन दोनों को सच्चा सुख पाने का अच्छा औसर देंगें। यद्यपि उन दोनों में जाति भेद था फिर भी उन्हें कुछ संकोच न था—बस केवल इन दोनों के बड़े हो जाने का विचार था, पर जो कुछ होना होता है, हो के रहता है। नरेश की मां तो नरेश के युवा होने के पूर्व ही चल बसी थीं

केवल उसके पिता थे। फिर भी उनका विचार बदला नहीं था—वह सरोज को अपनी ही लड़की मानते थे! पर भाग्य की बात कोई क्या जाने, किसे मालूम था कि दोनों के पिता भी अपने अरमानों को अपने दिल ही में लिए हुए इस संसार से चल देंगे। अब नरेश अपने चचा के यहां रहता था, वहीं पढ़ता भी था। सरोज की मां का मददगार अब वहां पर कोई भी तो न था इस लिए वह लाचार होकर सरोज और मुन्नू सहित अपने भाई के यहां बनारस में रहती थी।

सरोज की मां अपने पूर्वत् विचारों को भूलीं न थीं पर अब उनकी चल ही क्या सकती थी। सरोज के मामा तो इस व्याह से कोसों दूर भागते थे क्यों कि वे पुरानी प्रथाओं के कट्टर पक्षपाती थे। उन्हें इन दोनों का प्रेम ही एक कलंक के रूप में खटकता था फिर व्याह की कौन कहे। सरोज की मां जानती थी कि यदि वह इस व्याह के लिए अधिक ज़ोर देगी तो समाज उस पर उंगली अवश्य उठाएगा क्यों कि उसका अब जमाना बुरा था। उसमें अब पहले वाला बल न था। अन्त में विवश होकर उन्होने सरोज के व्याह को उसके मामा पर छोड़ दिया। नरेश को वह अब भी उतना ही चाहती थी जैसा कि पहले।

जब से नरेश ने सरोज के मामा के विचार सुने थे और

यह जान लिया था कि सरोज का ब्याह कहीं दूसरी जगह ठहर गया है, वह निराश हो गया था। अब वह वहां बहुत कम जाता था, वरन् जाना ही नहीं चाहता था, पर हृदय को एक दम थाम लेना आसान न था। इस निराशा का धक्का सरोज व नरेश दोनों को ही बहुत लगा पर उसे सहने के लिए ये लोग विवश थे! हां यह अवश्य जानते थे कि किसी भी दशा में वे लोग क्यों न रहें पर एक दूसरे को भूल न सकेंगे!

× × ×

नरेश के रोचना करते हुए सरोज की मां ने कहा—

"अब तो फिर जल्दी ही आओगे भय्या, क्यों कि सरोज के ब्याह के थोड़े ही दिन तो हैं!

"हां देखिए, यदि छुट्टी मिल गई!" नरेश ने गम्भीर भाव से कहा!

"छुट्टी कैसी भय्या! आना अवश्य होगा। जब तुम्हीं न आओगे तो फिर क्या होगा? सरोज तो तुम्हें बहुत मानती है। क्या उसी की शादी में न आओगे? ईश्वर ने सब बात ही मेट दी भय्या। अब क्या कहें!" फिर एक गहरी सांस ली। नरेश को मानो कोई रह रह कर उकसा रहा हो पर वह अपना भाव छिपाते हुए बोला—

"भला आऊंगा कैसे नहीं, सरोज शिकायत न करेगी !" इतना कह कर सरोज की ओर व्यंग रूप से देखा, सरोज की भौं संकुचित हो गईं ! सरोज की मां हंस दी !

"अच्छा अब विदा दीजिए।" नरेश ने सुखदा (सरोज की मां) के पैर छूकर कहा। सुखदा ने इसके उत्तर में नरेश की पीठ पर अपना हाथ फेरा। नरेश सरोज की ओर एक चंचल दृष्टि से देख कर बाहर होगया !

× × ×

बरात का सम्मान करने में नरेश सब से आगे है। ऐसा मालूम होता है मानों उससे अधिक हर्ष किसी को भी नहीं है पर यह कौन जानता है कि उससे ज़्यादे दर्द किसी को नहीं है ! वह क्षण भर में बाहर जाता है, क्षण भर में भीतर ! उसे इसी तरह दौड़ते दौड़ते सारी रात बीत गई और उसके देखते ही देखते सरोज चारो वेदों को साक्षी देकर रवीन्द्रनाथ को अर्पण भी हो गई ! दो दिन और बीत गए। आज शाम को सरोज की विदा है ! पर अभी नरेश उससे मिल न सके— कल होली है इस लिए बरातियों ने यहां एक दिन पहले ही धूम मचा रक्खी है ! काहे को कभी किसी को ऐसा अवसर मिलता ! सभी जी खोल कर एक दूसरे से होली खेल रहे हैं ! पर नरेश

प्रत्येक से अपनी तबियत न ठीक होने का बहाना करके अपना सुफ़ेद कुर्ता उसी तरह बेदाग़ बनाए है ! उसकी इच्छा है उस पर कोई एक बूंद भी रंग न डाले ! जब तक बाहर धूम रही वह घर से बाहर न गया पर घर के बच्चे कब मानने लगे ! नरेश जैसे ही सरोज के कमरे में एकान्त पाकर गए मुन्नू उनके पीछे पीछे पिचकारी लेकर दौड़ा ! नरेश ने मुन्नू को मना करते हुए कहा—

"देखो मुन्नू हम पर रंग न डालना, हम तो बहुत बड़े हैं, इधर डालो !" इतना कह कर उन्होंने सरोज की ओर इशारा किया ! सरोज पीछे बैठी बैठी नहीं मालूम क्या क्या सोच रही थी ! पर नरेश की आवाज़ सुनते ही घूम पड़ी और मुन्नू को पिचकारी के साथ अपनी ओर बढ़ते देख उसके हाथ से पिचकारी छीन ली। कुछ देर तक वह उसे लिए ही बैठी रही ! नहीं मालूम किस असमंजस में पड़ी थी ! उसे रह रह कर उस दिन के नरेश के एक एक शब्द याद आरहे थे ! वह सोचती थी यदि मैं यही रंग नरेश पर डाल पाती तो कदाचित उनकी यह साध पूरी कर पाती ! पर साहस नहीं हो रहा था कि इसकी शुरुवात अब वह कैसे करे ? इतने ही में नरेश उस ओर बढ़े और सरोज के हाथ से पिचकारी लेते हुए कहा—

"अब क्या सोचना है सरोज ? पिचकारी न छुओ ! अब वह समय नहीं है, इस इच्छा को अब यूंही दब जाने दो !"

सरोज बड़ी ही दृढ़ता से पिचकारी पकड़े थी। नही मालूम कब तक इन दोनों में छेड़ छाड़ होती रही। मुन्नू खेल के कारण वहां अधिक न ठहर कर बाहर भाग गया !

हां इतना ज़रूर मालूम हुआ कि सरोज की पीली साड़ी और नरेश का सफ़ेद कुर्ता दोनों ने ही उन अरमान भरी रंग की बूंदों का स्वागत किया !

× × ×

होते होते सरोज विदा भी होगई। कुछ दूर तक लोग भेज कर वापस भी आगए और फिर तमाम झगड़ों में पड़ गए, पर नरेश उसी तरह दरवाज़े की टेक लगाए खड़े खड़े अपने कुर्ते की उन सूखी हुई रंग की बूंदों को आसुओं द्वारा सींचते रहे !

———— ————

"सच्चा प्रेम"

पास की नदी शुभ्र उज्वल तथा चंचल तरंगों के साथ प्रवाहित हो रही थी। उन तरंगों के साथ साथ मेरे मन में भी भांति भांति की तरंगे उठ रहीं थीं—कभी कभी नवीन आशा को गोद में लेकर उछल पड़ती थी। जीवन में एक नवीनता की झलक थी, मन में हर्षोल्लास का स्रोत ही बह रहा था! शिक्षित तो थी ही, अभी कुछ ही दिन हुए थे कि परीक्षा फल निकला था, जिसमें मैं मैट्रिक की परीक्षा में सर्वप्रथम आई थी। जितना अधिक शिक्षा का घमण्ड था उससे भी अधिक अपने रूप रंग का, अपनी अमीरी और ठाट बाट का, और सबसे अधिक घमण्ड तो इस बात का था कि कुछ ही दिन में एक इंगलैंड रिटर्न और धनाढ्य की अर्धांगिनी होने जा रही थी। जीवन कुछ ऐसे वातावरण में पला था कि अमीरी ठाट-बाट, चड़क-भड़क के सामने कोई वस्तु साधारण पदवी वाली आँखों के सामने जचती ही न थी! फिर भला अब क्या कहना था कि जब भविष्य का

जीवन उससे भी अधिक शोभनीय प्रतीत होता था। कितने ही विचार मस्तिष्क में एक साथ उठते थे और आपस में खेलने लगते थे। हमारे टेनिस का समय था, पर अपने विचारों में ऐसी मग्न थी कि वहां जाने की सुध भी न रही। शाम काफ़ी हो चुकी थी, चन्द्रदेव अपने आगमन की शुभ सूचना दे रहे थे। मैं आंख उठा कर कुछ कुछ देर पर उनकी मनोरम छवि देख लेती थी और फिर अपने विचारों के पुल बांधने लगती थी! इतने ही में पीछे से आवाज़ आई:

"शोभा!"

मैंने घूम कर देखा—मनोहर थे, फिर आश्चर्य से पूछा—

"अरे तुम कब आए।"

"अभी दो घन्टे भी नहीं हुए।"

"तो तुम यहां कैसे पहुंच गए।"

"पहले तो तुम्हारे घर गया था—मैट्रिक में उत्तीर्ण होने की बधाई देने। वहां तुम्हारे पिता जी से मालूम हुआ कि तुम टेनिस में गई हो, बस उधर ही जा रहा था, पर तुम यहीं मिल गईं।"

मैंने देखा—उनके मुख पर आशा की एक उज्वल रेखा दौड़ रही थी, होंठो में नवीन मुस्कराहट थी और आंखों में एक

गूढ़ प्रश्न—। मैं उनका प्रश्न खूब समझ गई और सोचने लगी कि अब क्या उत्तर दूँ । हमारे उत्तर से इनकी आशा टूट जाएगी. हृदय दहल उठेगा और एक आघात पहुँचेगा ! मैंने सोचा, यदि मैं यहां से चल दूं तो शायद उत्तर देने से बच सकूं—पर कब तक । इतने ही में मैंने उठना चाहा कि मनोहर ने कन्धे पर हाथ रख कर फिर वहीं बिठाल दिया और उसी बेंच पर खुद भी बैठ गया ।

"अब क्या कहती हो शोभा," मनोहर ने एक मुस्कराहट के साथ कहा !

"कहना क्या है ।"

"पहले वाली बातें तो सब याद हैं न ।"

"नहीं ।' मैंने रुखाई के साथ कहा

"नहीं ।" क्यों हँसी करती हो शोभा ।"

"हँसी नहीं, सच कहती हूँ !"

"सच ।"

'हाँ', मैंने दृढ़तापूर्वक कहा, और फिर उनके मुख की ओर देखा—उनके मत्थे पर पसीना था और आंखों में आंसू की दो बूँदे । मैं यह सब देख कर भी न पसीजी और मुस्करा दी !

"तुम जो कुछ भी कह रही हो हमें विश्वास नहीं होता

शोभा ! ज़रा सोचो तो तुम किससे और क्या कह रही हो। बचपन काल से आज तक की सारी आशाएं धूल में मिला रही हो, तुम्हारे कहने के अनुसार अभी तक मैं तुम्हारे मैट्रिक पास करने की प्रतीक्षा में बैठा था। उस दिन लीडर में परीक्षा-फल देखते ही मेरी सारी दबी अरमानें उछल पड़ीं। मैं एक बहुत बड़ी आशा लेकर बनारस से चल पड़ा। मुझे ज़रा भी भय नहीं था कि मेरी यह बीस दिन की अनुपस्थिति में तुम्हारे विचार एकदम बदल जायंगे! मैंने समझा था शोभा जब कि संसार में मेरा कोई भी अपना नहीं है तो तुम्हीं हो! किन्तु······किन्तु ·····!"

"परिस्थित के साथ विचार बदला ही करते हैं।" मैंने कहा।

"परिस्थित ! क्या तुम्हारी परिस्थित अब बदल गई ?"

"हां"

"क्यों ?" उन्होंने आश्चर्य से कहा !

"तब मुझे पता न था कि हमारा भविष्य इतना उज्ज्वल होगा।"

"क्या हमारे साथ तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल न होता शोभा ?" उन्होंने विनीत भाव से पूछा !

"उतना नहीं, जितना......।"

"जितना......हां और भी आगे कहो, क्या कहती हो!"

"तुम्हें चोट तो नहीं पहुँचेगी।"

"चोट? पहुंचने दो, पर तुम्हें जो कुछ कहना हो आज साफ़ साफ़ कह डालो! इतना तो सुन चुका हूं और भी जो कुछ कहोगी हृदय थाम कर सुनूंगा!'

"अच्छा तो लो सुनो।" मैंने हंस कर कहा!

"हां कहो।"

"कुछ ही दिन में मैं एक इंगलैंड रिटर्न तथा धनाढ्य युवक मि० वर्मा की धर्म पत्नी होने जा रही हूं! वहां एक उच्च पदवी है, धन है, दौलत है, आलीशान महल है—और तुम्हारे पास क्या है, बताओ?" मैंने व्यंग की हंसी हस कर कहा! फिर उनकी ओर देखा; उनका बदन थर्रा रहा था, भौंहे संकुचित थीं। ऐसा मालूम होता था मानों उनके सरपर हथौड़े चल रहें हो और वह बड़े कष्ट सह रहे हों!

"हमारे पास......! कुछ नहीं है, मैं एक निर्धन हूं कंगाल हूं—हां एक वस्तु अवश्य है। वह है 'सच्चा प्रेम'। पर जब उसकी ओर कोई आंख उठा कर देखने वाला नहीं तो वह भी व्यर्थ है।" उन्होंने बड़ी कठिनता से कहा।

"प्रेम तो सभी जगह मिल सकता है पर द्रव्य नहीं।"

"ईश्वर करे तुम्हारा विचार अटल रहे।"

इतना कह कर मनोहर उठ पड़े और हमारे पैर छूने को बढ़े पर मैंने अपने पैर समेट लिए। वह फिर निराश होकर चल दिए! यह ज़रूर देखती रही कि वह रुमाल से अपने आंसू पोछते जाते थे—जी में आया एक बार पुकारूं—पर अपने आप ही कहा "हटाओ इससे लाभ ही क्या।"

× × ×

विवाह के बाद मेरे दिन मेरी नज़रों में बहुत ही सुख से बीत रहे थे। एक अच्छी शानदार कोठी थी जिसमें मैं रहती थी। सामने बाग़ीचा था, जिसके चारो ओर दीवालें उठी थीं! मैं नित्य शाम को वहीं जाकर बैठती थी। दो दो दासियां लगी थीं जो हर समय मेरी सेवा के लिए तत्पर रहती थीं। प्रतिपल अपने रूप-रंग को देखना, अपने को भांति भांति के वस्त्रों से, क्रीम, पाउडर इत्यादि से सुसज्जित रखना, यही हमारी दिनचर्या थी। पतिदेव हमारे काफ़ी स्वतंत्र थे ही फिर हमारा क्या कहना। नित्य उन्हीं के साथ खाना-पीना, उठना-बैठना, यहां तक कि उन्हीं के साथ नित्य सुबह शाम घूमना फिरना ही हमारा काम था। जहां कहीं से भी उनके नाम निमंत्रण पत्र आता था, हमारा

नाम ज़रूर होता था और मैं बराबर जाती थी। उन्हीं के साथ प्राय: क्लब में भी भाग लेती थी। हां एक बात कभी अवश्य खटक उठती थी; वह थी अपने पतिदेव का साधारण स्वभाव ! उनकी आदत थी कि वह प्रत्येक स्त्री से हंसी मज़ाक करने में किंचित भी सकुचाते नहीं थे। पर यह खटका उसी समय तक रहती थी जब तक कुछ सामने देखती थी, उसके बाद अपने ही ठाट-बाट में फिर लग जाती थी।

एक दिन की बात है कि शाम के समय मैं 'मिस्टर वर्मा' के साथ बैठी हुई चाय पानी कर रही थी कि दर्वाज़े पर मोटर की आवाज़ आई। आवाज़ सुनकर वह चौंक पड़े और बोले—

"देखो आज तो बड़ी देर होगई, मिस मालती की कार आ भी गई और मैं तैयार न हो सका।"

इसे सुन कर बस कुढ़ गई ! जभी मालती की कार उन्हें लेने आती थी, मुझे एक जलन सी होने लगती थी, पर मैं कुछ बोलती न थी !

मेरे देखते ही देखते वह तैयार भी हो गए। एक बात आश्चर्य की भी थी कि उस दिन उन्होंने मुझसे चलने के लिए नहीं कहा। मुझे और भी शंका हुई और मैं बिना उनके कहे ही तैयार होगई पर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि उस दिन का मेरा

चलना उन्हें कुछ अच्छा न लगा। फिर भी वे कुछ बोले नहीं, आगे आगे वह चल दिए और पीछे पीछे मैं ! मैं मोटर से कुछ दूर ही पर थी कि वह कार के पास पहुँच गए। मैंने देखा कि मिस मालती ने उन्हें देखते ही चट से कार की खिड़की खोली और बड़े तपाक से हाथ मिलाया। मालती तो ड्राइव कर ही रही थी, पास ही वह भी बैठ गए। मेरा तो बस खून ही खौल उठा, पर करती क्या, चुपचाप पीछे वाली सीट पर जाकर बैठ गई !

क्लब में राउंड टेबिल के चारों ओर कुछ लोग और भी डटे थे। हम लोग भी जाकर वहीं बैठ गए। वहां के लोग हम लोगों को देखते ही बोल उठे—

"बड़ी देर की आप लोगों ने !"

"हां मिस्टर वर्मा के इन्तज़ार में देर हो गई।" मिस मालती ने मुस्करा कर कहा !

"लो आई-गई हमी पर बीत गई," मिस्टर वर्मा हंसकर बोले। इसे सुनकर वहां एक क़हक़हा मच गया ! कुछ समय तक आपस में बातें होती रहीं। इतने में पान और सिगरेट की तश्तरियां आगईं। मि० वर्मा पान तो खाते नहीं थे, सिगरेट ज़रूर उठा ली, पर और लोगों ने पान उठाते हुए कहा—

"क्यों मिस्टर वर्मा आप पान क्यों नहीं खाते ?"

"कोई खास वजह तो है नहीं—कुछ ज़्यादे पसन्द नहीं।"

"बड़े आश्चर्य की बात है कि मिस मालती पान पर इस कदर टूटती हैं और आप इतनी नफ़रत करते हैं" उस झुंड में से एक ने कहा। इतने में एक दूसरे साहब बोले उठे—

"अच्छा यह काम मिस मालती के सुपुर्द किया जाय। क्यों मिस मालती ? आपतो इन्हें पान खिला सकती हैं ?"

"विश्वास तो नहीं।" मिस मालती ने कहा !

"अरे मि० वर्मा तो आपके ही इशारों पर चलते हैं फिर आप ऐसा क्यों कहती हैं ?"

"मिस मालती ने सदा हमारी परीक्षा ली है—इसीलिए आज भी ऐसा कह रहीं है।" मि० वर्मा ने मुस्करा कर कहा। और व्यक्तियों में से एक ने मिस मालती की ओर देखकर फिर कहा :

"अच्छा मिस मालती ! आज हम लोग आपकी परीक्षा लेते हैं, देखें आप की हार होती है या जीत।"

"आज नहीं, किसी दूसरे रोज़।" इतना कह कर मिस मालती ने मेरी ओर संकेत किया। मैं मेज़ पर की एक किताब उठाए उसी के सफ़े पलट रही थी और अन्दर ही अन्दर जल रही थी।

सब लोग एक साथ बोल उठे—

"यह नहीं, बात छिड़ गई तो छिड़ गई।"

मैंने देखा, पहले तो मिस मालती चुप रही फिर बहुत सकुचते हुए दो पान उठा कर मिस्टर वर्मा की ओर बढ़ाया। मि० वर्मा ने पान लेना चाहा और फिर मेरी ओर देख कर कुछ रुक गए! सब की तालियां एक साथ बज उठीं, 'फ़ेल' 'फ़ेल' की पुकार गूंज उठीं, मैं भी चकित हो गई। इस शोर के होते ही मि० वर्मा ने मिस मालती के हाथ से पान लेकर खा लिया। मैं देखती रह गई! एक बार फिर सब लोगों में कहकहा मच गया। इस बार मिस मालती की जीत पर तालियां पिट गईं।

× × ×

होते होते दो वर्ष बीत गए, पर इन दो वर्षों में, हमारे विचारों में, हमारी दशा में बड़ा अन्तर आ गया। जिस धन के लिए हमें कभी अभिमान था, वही धन अब हमारी दृष्टि में तुच्छ प्रतीत होता था। जिस ठाटबाट और अमीरी के लिए मैंने मनोहर का 'सच्चा प्रेम' ठुकरा दिया था, वही अमीरी, वही बनाव-श्रृंगार हमें नीरस मालूम पड़ता था। मैंने प्रेम को जितना ही सस्ता समझा था वह उतना ही मंहगा निकला। अब मुझे ज्ञात होता था कि मनुष्य संसार में जितनी सुगमता से धन-द्रव्य

पा सकता है उतनी ही सुगमता से प्रेम नहीं। 'प्रेम' सर्वत्र नहीं मिल सकता, यह मुझे विश्वास हो गया ! मुझे अब अपने जीवन में सब सुख होते हुए भी बहुत बड़ा अभाव दिखता था, वह था सच्चे प्रेम का ! और यही अभाव हमारे जीवन को दुखी बना रहा था। मि० वर्मा के पास हमारे लिए सब सुख थे पर प्रेम नहीं था। उनके स्वभाव से मैं संतुष्ट न थी क्योंकि मैं खूब समझ चुकी थी कि उनके हृदय में मिस मालती का आसन बहुत ऊंचा था। मालती के साथ उनका घूमना-फिरना, हंसना-बोलना मुझे असह्य होता था पर मैं कुछ बोलती न थी—और बोलने का प्रभाव भी तो कुछ न था। हां, केवल मन ही मन जला करती थी। अब मुझे साफ़ मालूम हो रहा था कि मेरा जीवन उनके पथ का बाधक हो रहा था। हमारे कारण उनकी स्वतंत्रता में कुछ न कुछ अड़चने ज़रूर पड़ती थी ! अब मैं उनके साथ न तो क्लब ही जाती थी और न घूमने फिरने ही जाती थी। हमारी रहन-सहन एक-बारगी बदल गई थी—मुझे अब सादगी सब से अधिक प्रिय थी। बहुब कुछ दिन जीवन के इस तरह भी कटते रहे। मेरा घमण्ड पूरी रूप से चूर हो चुका था। मेरी इच्छा उठती थी कि यदि मैं मनोहर को क्षण मात्र के लिए भी पा जाती तो उनसे अपने अपराधों की क्षमा मांग लेती, पर पाती कहां ? उनका

मुझे पता भी न था कि हूँ कहां और किस दशा में। जिन जिन शब्दों से मैंने मनोहर के हृदय पर चोट पहुंचाया था वे ही सब मुझे वाधा से प्रतीत हो रहे थे। जीवन बड़ा दुखमय हो रहा था।

उन्हीं दिनों में कलकत्ते से पिता जी का पत्र आ गया। उन दिनों उनका स्वास्थ्य कुछ ठीक न था। मैंने मि० वर्मा से कलकत्ते जाने की इच्छा प्रकट की। उन्हें उसमें भला क्या आपत्ति हो सकती थी—वह कदाचित् खुश ही हुए होंगे! हां तो कहना यह है कि उन्होंने सहर्ष आज्ञा दे दी और मैं कलकत्ते चल पड़ी।

× × ×

चलते समय ट्रेन पर मि० वर्मा मुझे पहुँचाने आए थे, और मिस मालती भी। कलकत्ते तक वह हमारे साथ आते इसकी मुझे आवश्यकता न थी क्योंकि मैं अपने जीवन में भी काफ़ी स्वतंत्र थी। कई बार ब्याह के पहले भी इधर उधर जा चुकी थी जिससे साहस काफ़ी था, दूसरे मि० वर्मा को छुट्टी भी न थी वरना वह चले ही आते। मैं ट्रेन पर बैठ चुकी थी पर मिस मालती बाहर खिड़की के पास खड़ी थी क्योंकि गाड़ी छूटने में अधिक समय न था। मि० वर्मा हमारे पास ही खड़े थे, उनके चेहरे पर अब भी कोई शिकन न थी जिससे मुझे और भी दुख हो रहा था। मेरी आखों में फिर भी दो बूँदे आ

गईं। मि० वर्मा ने अपनी रेस्टवाच देख कर कहा "गाड़ी छूटने में अब सिर्फ सात मिनट बाकी हैं।"

इसे सुन कर मैंने भी अपनी कलाई की ओर आंख फेरी। उनका कहना ठीक था। पहले सोचा उनसे अब कुछ न कहूँ और कहती क्या खिड़की के पास ही मिस मालती खड़ी थीं फिर भी इतना तो कह ही दिया—

"आशा है अपना हाल-चाल लिखते रहिएगा?"

"हां, जरूर! तुम भी अपना समाचार लिखती रहना; अपने पिता का हाल भी।"

"हां, चेष्टा तो यही करूंगी।

"चेष्टा—नहीं ज़रूर लिखना।" उन्होंने आग्रहपूर्वक कहा। मैं सोच रही थी शायद वह मुझ से यह भी पूछें कि "तुम कब तक आओगी?" पर मेरा विचार ग़लत हुआ जिससे मुझे और भी चोट पहुँची। इतने में गाड़ी ने सीटी दी, उन्होंने मेरी ओर देखा और मैंने उनकी ओर। वे जल्दी से उतर पड़े। मिस मालती ने बड़े तपाक से मुझसे नमस्ते किया। मैंने भी उसी भाव से उनका आदर किया।

गाड़ी चल दी। मैं बहुत देर तक उसी ओर देखती रही। मैंने यह भी देखा कि गाड़ी प्लेटफार्म से निकल जाने के बाद

मि० वर्मा ने अपना एक हाथ पैन्ट में डाला और दूसरा मिस मालती के कन्धे पर रख कर अपनी कार की ओर चल दिए।

मैं उधर देखते ही देखते नाना प्रकार के विचारों में लीन हो गई। स्टेशन पर स्टेशन निकलते रहे पर मेरे विचारों में बाधा न पड़ सकी। पूरा दिन और पूरी रात बीत गई। पर मेरी आंख तक न लगी। मेरा सर चक्कर कर रहा था। चित्त की अशान्तता इतनी बढ़ी थी कि कुछ समझ में नहीं आता था—ऐसा भास हो रहा था कि पूरा शरीर ज्वर से तप रहा है। उठने का साहस तक न होता था। गाड़ी भर में "कलकत्ता" "कलकत्ता" की पुकार मच गई। मैं कुछ सचेत हुई, देखा कलकत्ता स्टेशन आ गया। तमाम भीड़ लग गई, कोई अपना समान चढ़ाने के लिए परेशान था कोई उतारने के लिए। मैं लड़खड़ाती हुई उठी, एक कुली को संकेत करके बुलाया और अपना सामान उतरवा दिया। सामान उतर जाने के बाद मैंने भी उतरने की चेष्टा की। एक ज़ीना बस उतरी थी, सर एकदम घूम गया फिर होश न रहा।

× × ×

कई घन्टे बाद होश आने पर मैंने देखा कि मैं फर्स्ट क्लास वेटिंगरूम में एक कोंच पर लेटी हूँ। चारों ओर काफ़ी भीड़ लगी

है, रेलवे के कुछ अफसर भी पास ही मौजूद थे। एलेक्ट्रिक फैन ज़ोरों से चल रहा था, पास ही एक मेज़ पड़ी थी जिस पर शीशे के कई बर्तन रक्खे थे। किसी में पानी, किसी में बर्फ व किसी किसी में शर्बत; इसी तरह सब बर्तन भरे थे। जैसी मेरी आंख खुली भीड़ में से एक आवाज़ हुई 'शर्बत दो शर्बत ! होश तो आ गया।"

मैंने देखा वहां मेरा अपना कोई भी न था; चित और भी व्याकुल हो उठा। शर्बत पीने की इच्छा न थी पर कुछ बोलने का साहस भी न होता था। इतने में किसी ने मेरे मुंह तक एक चम्मच पहुँचाया। मैंने आंख उठा कर देखा—सिरहाने एक युवक खद्दर का कुर्ता तथा खद्दर को टोपी परिधान किए बैठा है। शर्बत के लिए मुंह तो खुला ही साथ ही आंखें बड़ी देर तक उसी ओर अटकी रहीं तब जाकर ज्ञात हुआ कि वह मनोहर थे। मुझे बहुत कुछ धैर्य्य हुआ। मैंने देखा उनकी दोनों आखों में आंसू थे और वह मौन थे। मेरा रोम रोम लज्जा और ग्लानि से दबा जा रहा था, कुछ समझ में नहीं आता था कि उनसे अब क्या कहूँ, और क्या न कहूँ ? आंखें भी अधिक देर उधर उठी न रह सकीं और झुक गईं। उन्होंने फिर शर्बत मुंह में डालने की चेष्टा की। मैंने मुंह खोल दिया।

झुंड में से फिर एक आवाज़ हुई—

"इन्हें हास्पिटल ले जाओ तो अच्छा हो।"

"नहीं, सीधे घर ही ले जांएगे।" महोहर ने उत्तर दिया।

"किसके घर?" रेलवे के एक अफसर ने पूछा।

"इन्हीं के घर।"

"क्या इनका घर यहीं है?"

"हां"।

"मालूम होता है कहीं बाहर से आ रहीं थीं?"

"हा।"

"आप इनके घर को अच्छी तरह जानते हैं?"

"बहुत अच्छी तरह।"

"मालूम होता है, आप इनके रिश्तेदार हैं!" झुंड में से एक ने पूछा।

"हां" मनोहर ने बड़े दुख के साथ उत्तर दिया! मनोहर ने घर ले जाते समय मुझसे बारबार पूछा। "मि० वर्मा को तार दे दें?" पर मैंने इन्कार किया।

× × ×

घर आए पन्द्रह दिन बीत चुके, हमारी दशा बहुत कुछ सुधर भी चुकी थी पर उठने बैठने या चलने फिरने में अब भी कष्ट होता था। मनोहर के कारण हमारी पूरी देख

भाल होती थी, उन्होंने हमारी तथा पिता जी की सेवा पूर्ण रूप से की थी। पिता जी का तो उनके प्रति अपूर्व अनुराग था। वह उन्हें अपने पुत्र के ही समान मानते थे। अधिकतर मनोहर हमारे ही यहां रहते थे फिर आज कल तो उनका पूरा दिन सेवा सुश्रा में ही बीत जाता था।

पिता जी से मालूम हुआ कि मनोहर ने अभी तक शादी नहीं की, उनका यह त्याग देख कर हमारी आंखें खुल गईं। कई बार जी में आया कि मनोहर से पूछूं कि उन्होंने शादी क्यों न की पर साहस न हुआ। कुछ यथोचित समय भी न मिला। इसी तरह दो चार रोज़ और बीते। निर्बलता भी काफ़ी दूर हो चुकी थी जी में आया मिस्टर वर्मा को एक पत्र लिख दूं जिसमें हृदय के सच्चे भाव खोल कर दिखा दूँ। उन्हें बता दूँ कि अब मैं अपना जीवन किस प्रकार उन्हें मुक्त कर देने के बाद बिताना चाहती हूँ! यही सोचते सोचते रात के ११ बज गए, मनोहर और पिता जी दोनो ही सो गए थे। मैं उठी मेज़ पर से पैड और कलम उठाया और चारपाई पर बैठ कर पत्र लिखने लगी।

सादर प्रणाम !

मैंने आपसे शीघ्र पत्र लिखने का वादा किया था, पर कुछ चित की अस्वस्थता के कारण पूरा न कर सकी। अब

मैं बिलकुल अच्छी हूं; पिता जी भी काफ़ी अच्छे हैं। मैं अब तक आपके पत्र की प्रतीक्षा करती रही पर आज निराश होकर आपको पत्र लिख रही हूँ!

मैं इसी पत्र में अपने आज तक के किए हुए अपराधों की क्षमा मांग कर आपको इस विकट बन्धन से मुक्त कर देना चाहती हूँ। जिस तरह मेरे यह चार वर्ष बीत गए उसी तरह मेरे पूर्वत् विचार भी उन्हीं के साथ बीत गए। जो हृदय कभी धन द्रव्य पर न्योछावर हो रहा था वह अब उसका आदर नहीं कर पाता। केवल धन द्रव्य ही पाकर जीवन कितना सुखी रह सकता है अब मैं खूब समझ गई। आपके पास मुझे सब सुख दिखलाई दिए पर यदि नहीं दिखलाई दिया तो 'सच्चा प्रेम' जिसके बिना मनुष्य जीवन बिलकुल नीरस है। अब मुझे अपने जीवन से घृणा होने लगी है! मैं अब तक आपकी पथ की बाधक रही जिसका मुझे विशेष दुख है। आप मिस मालती को भी अपनी इच्छानुसार सुखी नहीं कर पाते थे—केवल मेरे ही कारण। पर मेरी इच्छा है कि मैं अब आपके पथ की कण्टक होने के लिए वहां न आऊँ और अपना शेष जीवन देश सेवा में बिता कर सफल करलूँ और इसमें मुझे बहुत शान्त मिलेगी। मैं आपसे अपने अपराधों की क्षमा मांगते हुए किंचित भी

लज्जित नहीं हूँ और आशा है कि आप मुझे अवश्य क्षमा करेंगे।

अच्छा अब बिदा।

आपकी—

अपराधिनी

"शोभा"

पत्र लिखते लिखते दो बज गए, सर चक्कर खाने लगा। साहस न हुआ कि उसे एक बार पढ़ लेती। आख़िरकार पत्र को सिरहाने रखकर लेट रही पर नींद फिर भी न पड़ी। पूरी रात बीत गई, मैं एक उलझन के साथ में करवटे बदलती रही। नाना प्रकार के विचार मस्तिष्क से टकराते रहे! घड़ी की ओर देखा—चार बज गए थे। मैंने पत्र फिर पढ़ना शुरू किया, ज्यों ज्यों पत्र पढ़ रही थी आंखों से आंसू की धारा बह रही थी फिर भी पढ़ती जाती थी! कुछ हिस्सा बाक़ी रह गया था कि आंखें कुछ डगमगाईं—देखा,—पीछे कुर्सी की टेक लगाए मनोहर भी खड़े हैं। मैं चौंक पड़ी। पत्र को छिपाने लगी कि मनोहर ने हाथ पकड़ लिया। मैं समझ गई कि मनोहर ने पत्र पढ़ लिया और लज्जा से सिकुड़ गई जिससे आंखें ऊपर न उठ सकीं!

"पत्र छिपा क्यों रही हो ?" मनोहर ने पूछा।

"क्या तुमने उसे पढ़ लिया ?" मैंने पूछा !

"नहीं तो।"

"सच कहो मनोहर ! तुमने ज़रूर पढ़ लिया है।"

मनोहर कुछ देर के लिए चुप होगए और फिर एक दीर्घ निःश्वास लेकर बोले :

"हां पढ़ तो लिया है, पर थोड़ा सा, क्या पूरा पढ़ने दोगी ?"

"नहीं," मैंने रुंधे हुए कण्ठ से कहा। मनोहर हमारे पास ही बैठ गए और हमारे हाथ से पत्र लेने की चेष्टा करने लगे पर मैंने पत्र न दिया ! अन्त में विवश होकर उन्होंने विनीत भाव से कहा :

"शोभा ! हमने जो कुछ भी इसमें पढ़ा है उससे हमें बहुत बड़ी आशंका हो रही है। क्या तुम इतना बताने की भी कृपा न करोगी कि तुमने ऐसा क्यों लिखा ?"

"हमने स्वयम् नहीं लिखा मनोहर ! तुम्हारे त्याग ने मुझे ऐसा लिखने के लिए वाध्य किया !"

"हमारा त्याग ?. इसका मतलब तो हम न समझ सके।"

"तुम सब कुछ समझ गए मनोहर !" मैंने कहा।

"नहीं मैं कुछ न समझ सका शोभा।" मैं कुछ देर तो चुप रही फिर बड़े साहस से कहा :

"अच्छा एक बात पूछूँ ?"

"कृपा होगी—"

"तुमने अपना ब्याह क्यों नहीं किया ?"

मनोहर मेरा वाक्य सुनकर चुप हो गए! मैंने घूमकर देखा—उनकी आंखे सजल थीं मानो वे स्वयम् उत्तर दे रही हों!

"बोलो मनोहर! चुप न रहो!" मैंने फिर पूछा।

"याद करो शोभा! वह दिन जब तुमने मुझे बतला दिया था कि मैं किस योग्य हूं, फिर भला मैं शादी किस बल पर करता, जबकि मैं किसी को सुखी नहीं रख सकता था ?" इतना कह कर मनोहर फूट फूट कर रोने लगे। मेरा तो हृदय भरा था ही मैंने भी उनका साथ दिया। मैंने उनके कन्धे पर हाथ रखते हुए कहा :

"नहीं मनोहर वह मेरा विचार ग़लत था। अब तुमने मेरी आंखे खोल दी, मैं समझ गई कि संसार का कोई भी प्राणी केवल धन पाकर सुखी नहीं रह सकता। मनुष्य जीवन के लिए यदि कोई वस्तु सुखकर है तो 'सच्चा प्रेम' जो कि कितना भी धन देने पर भी हर समय और हर जगह खरीदा नहीं जा

सकता और उसी का अभाव हमारे जीवन में रहा। आज मैं तुमसे उसी की भिक्षा मांग रही हूँ।"

"मेरे पास कुछ भी तो नहीं है, मैं तुम्हें क्या दे सकूंगा शोभा!" मनोहर ने आंसू पोछते हुए कहा।

"नहीं मनोहर! तुम्हारे पास सच्चा प्रेम है और इसी में सब कुछ है। मैं अपना शेष जीवन तुम्हारे साथ देश सेवा कर के, पवित्रता के साथ और शान्त पूर्वक बिता सकूंगी। बस एक—केवल एक भिक्षा मांगती हूँ कि मैं अपनी अन्तिम सांस तक तुम्हारे 'सच्चे प्रेम' की पात्रिका बनकर रह सकूं—मुझे उसी में सुख होगा।" इतना कहकर मैंने अपने कम्पित कर मनोहर के पवित्र चरणों की ओर बढ़ाए कि मनोहर ने मेरे हाथ पकड़ लिए।

———

"अनन्त की ओर"

मेरा तांगा सरपट करता हुआ तेज़ी के साथ चला जा रहा था। मैं अपने विचारों में मग्न था, किसी ओर कुछ ध्यान भी न था, इतने ही में सड़क के दाहिनी ओर एक कहकहा मच गया। मैंने घूम कर देखा, पर समझ न सका कि क्या हो रहा है। जी में आया तांगा रोक कर देखूं तो सही क्या मामला है।

"तांगा रोक दो, देखूं यह भीड़ कैसी है ?" मैंने तांगे वाले से कहा।

"अरे बाबू जी यह कुछ नहीं है, एक भिखारिणी है, जिधर से निकल जाती है लोग उसका मज़ाक उड़ाते है।" तांगा वाले ने बड़ी लापरवाही से कहा ! मैं तो यह दशा सुन कर बस तप ही उठा और तांगा वाले से ज़ोर से कहा—

"तुम तांगा रोक दो, कुछ भी क्यों न हो।"

तांगा रुक तो गया, पर इतनी देर में भीड़ से काफ़ी दूरी पर जा चुका था। मैंने उसे उलटा वापस कराया और उसी भीड़ के पास जाकर खड़ा कर दिया और गौर से देखने लगा—कई आद-

मियों के बीच एक भिखारिणी, लेकिन केवल धन की भिखारिणी रूप की नहीं, गोद में एक डेढ़ वर्षीय बालक लिए हुए खड़ी थी। उसके सुनहले बाल उसके मुंह पर आ रहे थे जिससे उसकी शोभा और भी बढ़ रही थी! किन्तु उसके कपोलों की अरुणाई आंसुओं द्वारा धोई जा रही थी। प्रकृति की बहुत ही गंभीर और शांत मालूम हो रही थी। कुछ भी हो, फिर भी उसके चेहरे की एक ऐसी कांति थी जिससे स्पष्ट हो रहा था कि वह किसी बड़े घराने की ही बहू बेटी है। लेकिन उसके सौभाग्य ने उसे अपनी गोद से नीचे उतार दिया है जिससे वह दर दर की भिखारिणी बनी है। उसकी आंखे लज्जावश नीचे झुकी जा रही थीं; और उसके गोद का वह बच्चा कितना भोला! कितना सुन्दर! और कितना आकर्षक! उसके वे कुंचित केश और अरुण कपोल कैसे मनोहर थे, उसका ललाट कितना चौड़ा और सुडौल था! मैं एकटक उसी ओर देखता रहा—बालक चकित चारों ओर देख रहा था, मुझे बड़ा तरस आया। मैंने देखा, वहां दो चार लोग ऐसे धूर्त थे कि उस भिखारिणी का उपहास कर रहे थे—कुछ लोग व्यंग बोल रहे थे। किन्तु सबका उत्तर केवल आंसुओं द्वारा दे रही थी, ज़रा देर बाद वह आगे बढ़ने लगी कि उन आदमियों में से एक ने हंस कर कहा—

"देखो, देखो भगी।" इतना कह कर उसने ताली बजाई। दूसरे ने फिर पुकारा :

"अच्छा बता तो तुझे क्या चाहिए ?" इतना सुनकर कुछ लोग फिर ज़ोर की हंसी हंस पड़े, भिखारिणी ने घूम कर तो न देखा पर इतना अवश्य कह दिया :

"मुझे कुछ न चाहिए, बाबू जी।"

उसके स्वर में बड़ी वेदना थी, बड़ा दर्द था, मैं थर्रा उठा। मुझे बड़ा क्रोध आया, जी में आया उन दुष्टों को एक तरफ़ से पीट चलूं पर मैं अकेला था, करता क्या ? हां इतना ज़रूर कहा—

"तुम लोग बड़े निर्दयी हो।" मेरा वाक्य सुन कर लोग और भी ज़ोर से हंस पड़े और फिर तितिर वितिर होकर चल दिए। मैं एकटक उस भिखारिणी की ओर देखता रह गया। जी चाहता था उसे अपने साथ अपने घर ले जाऊं और उसकी पूरी सहायता करूं पर उससे कहता कैसे—वह मेरा विश्वास कैसे करती ? कहीं उन्हीं धूर्तों में से एक हमें भी न समझ ले इसी उलझन में मैं पड़ा था कि तांगा वाले ने आवाज़ दी :

"बाबू जी अब तो बड़ी देर हो रही है।" मैं बड़ा लज्जित हुआ। मेरे कारण उसे अवश्य बड़ी देर हो चुकी थी। अब तक

वह दूसरी मज़दूरी कर चुकता। मैंने बड़े नम्र भाव से कहा :

"हां देर तो काफ़ी हो गई। अच्छा लो तुम्हें पूरा मेहनताना दिए देता हूं।" इतना कह कर मैंने बारह आने उसे थमा दिए।

"क्या घर अब न जाइएगा ?" उसने पूछा।

"नहीं अब अभी घर न जाउंगा।" वह इतना सुन कर अपने रास्ते चल पड़ा, और मैं उसी भिखारिणी के पीछे हो लिया पर कुछ दूर चलने पर रास्ते में एक पट्टी वाला मिला। भिखारणी जैसे ही उसके पास से निकली उसके गोद का बालक पट्टी वाले की चाली की ओर झुक पड़ा—पर उस भिखारिणी ने कुछ ध्यान न दिया और आगे बढ़ती चली गई। बच्चा रोने लगा, मुझे बड़ा दुख लगा। मैंने उस पट्टी वाले से चार पैसे की पट्टी खरीदी और ज़रा लम्बे क़दम बढ़ा कर उसके पास पहुँच कर कहा :

"ज़रा देर रुक जाओ।" उसने पीछे घूम कर देखा और कुछ चकित हुई !

"इसे इस बच्चे को ले लेने दो।" मैंने कहा ! बच्चा मेरे हाथ में पट्टी देखते ही झुक पड़ा। मैंने उसे पट्टी देदी और वह हंस दिया ! मैं उसकी उस भोली और सन्तोष भरी हंसी

पर न्योछावर हो गया। जी में आया उसे गोद में ले लूं परन्तु रुक गया! भिखारिणी उसी जगह ज़मीन पर बैठ गई और उसे पट्टी खिलाने लगी।

"तुमने भी तो कुछ न खाया होगा।" मैंने पूछा।

'मैंने सब कुछ खाया है बाबू जो! बस आपकी यही बहुत कृपा हुई।"

'नहीं यदि तुम हमारे घर तक चली चलो तो हम तुम्हें पेट भर भोजन खिला सकते हैं!"

"पेट भर भोजन अब इस भाग्य में नहीं।"

"विश्वास करो! हम तुम्हें अवश्य देगें पर ज़रा घर चलो, मेरे पास यहां दाम नहीं है नही तो कुछ लेकर दे देता!"

"आपका घर कहां है?"

"यही कुछ दूर पर मिलेगा!"

"अच्छा चलिए मैं आपके लिए किन शब्दों में ईश्वर से प्रार्थना करूं।" इतना कह कर वह उठ कर मेरे पीछे चल पड़ी।

घर पहुँचते ही मैंने उसे अपना हिस्सा रक्खा हुआ भोजन खिला दिया। उसने बड़ी प्रसन्नता के साथ भोजन किया, मुझे भी

उसे सन्तुष्ट कर पाने पर बड़ा हर्ष हुआ। जब वह भोजन करके निश्चिन्त होकर बैठी मैंने उससे कहा—

"क्या तुम अपना सब हाल बता सकोगी?"

"बाबू जी मेरी दशा सुनने योग्य नहीं!"

"नहीं—मेरी बहुत बड़ी इच्छा है, तुम केवल इतना बता दो कि तुम इस दशा में कब से और क्यों हो।" मेरा वाक्य सुन कर उसकी आंखों में आंसू आ गए!

"तुम तो किसी बड़े घराने की जान पड़ती हो।" मैंने फिर कहा। वह कुछ देर चुप रही फिर एक आह भर कर बोली:

"हां—तो आप मेरी कहानी सुनना चाहते हैं, अच्छा सुनिए। मैं आजमगढ़ में एक उच्च कुल की बहू थी। मेरी मां का घर तो इतना बड़ा न था पर व्याह बहुत बड़े घर में हुआ था! वहां हमारी सास थी, श्वसुर थे और एक देवर भी था! मैके में मैं अपनी मां की अकेली ही थीं। बड़े लाड़ प्यार से पली थी पर दुर्भाग्यवश मां मेरे ब्याह के पूर्व ही स्वर्गलोक को चल बसी थी और पिता ब्याह के तीन महीने बाद। फिर तो मेरा सहारा केवल पति-घर में ही था। वहां से हट कर एक दिन के

लिए भी मेरे लिए ठिकाना न था, जिससे और किसी की तो कुछ भी हानि न थी पर मेरी सास जी को मुझे वहां का इतना रहना बहुत बुरा लगता था। वह हमारे साथ में बड़े बड़े अत्याचार करने की इच्छुक रहती थी पर मेरे पति देव के कारण कुछ अधिक कर न पाती थी। मैं भी उनका सहारा पाकर कुछ अधिक चिन्ता न करती थी परन्तु वे दिन भी मेरे बहुत साथ तक टिक न सके! ब्याह के सात वर्ष बाद मेरे पतिदेव भी मुझे निराश्रित करके इस संसार से चल बसे, हां केवल एक चिन्ह दे गए थे। उनके देहान्त के समय मैं गर्भवती थी और वही मेरी सास के पास मेरे साथ अत्याचार करने का बहुत बड़ा साधन था। पतिदेव के मृत्यु के बाद ही वह मेरे साथ अपनी दबी हुई इच्छा पूरी करने लगीं। तब उनका समय था, कोई मेरी ओर से बोलने वाला भी न था! छः महीने के ही अन्दर उन्होंने मुझे जी भर बदनाम किया जिससे प्रत्येक की दृष्टि में मैं एक कुलटा सी जान पड़ती थी। छः महीने बाद प्रसवकाल की कठिन घड़ी में उन्होंने मुझे घर से निकाल दिया—उस दशा में मुझे किसी ने भी आश्रय न दिया, और विकट अंधेरी रात में सुनसान स्थान में एक पीपल के वृक्ष का आश्रय लेकर मैंने इसे प्रसव किया। दो दिन तक जब तक मुझमें उठने बैठने की शक्ति ज़रा

भी न थी मैं बिना जल पान के दिन बिताती रही। तीसरे दिन से किसी प्रकार अपने पेट पालने के प्रबन्ध में लग गई।

मैं अपने को इस प्रकार ठुकराई देख कर लज्जा के कारण उस शहर में न रह सकी और कई छोटे छोटे शहरों में भ्रमण करती रही, फिर यहां चली आई। यहां आए मुझे अभी केवल १० दिन हुए हैं। पर यही २० दिन में मुझे पता चल गया कि संसार में अनाथों का ठिकाना नहीं है। यहां मेरा एक एक मिनट भार हो रहा है। अब मैं किसी पहाड़ी की ओर चल दूंगी। यह भी मेरी अभाग्यता का एक लक्षण है कि मैं इस दशा में भी इतनी स्वतंत्र न हो सकी कि अपना जीवन अपने हाथों समाप्त कर देती। पर मेरा साहस नहीं होता है केवल...... केवल........." इतना कहते हुए वह अपने बालक का मुंह देख फूट फूट कर रोने लगी। मेरा हृदय हिल गया मैं और अधिक सुनना न चाहता था, इसलिए एक दम बोल उठा—

"अच्छा बस। अब अधिक न कहो, मैं अब कुछ न सुन सकूंगा मेरा हृदय फटा जा रहा है। बस मेरे पास अब तुमसे कहने के लिए केवल एक बात है कि यदि तुम यहीं मेरी झोपड़ी में रह कर अपना शेष जीवन बिता सको तो मैं अपना सौभाग्य समझूँगा।"

"बाबू जी ! इस जीवन को इसी तरह टुकड़े मांग मांग कर बीत जाने दीजिए। इसके ऐसे भाग्य नहीं कि किसी एक स्थान पर बैठ कर बीत जाय। दुनिया क्या कहेगी।"

"दुनिया कुछ भी कहे पर अब तुम्हें यहां से जाने न दूँगा, तुम्हारे इस बालक की ओर देखकर मुझे न जाने क्यों अपने बीते दृश्य स्मरण हो रहे हैं। इसका सुडौल शरीर, इसका भोला मुख कभी......" कहते कहते मैं रुक गया, मेरी आंखों में आंसू आगए, गला रुंध गया। उसने हमें इस दशा में देख कर कहा—

"जान पड़ता है आप भी बड़े दुखी हैं।"

"यदि दुखी न होता तो दूसरे का दुख कैसे जानता !"

"क्या आपका पुत्र.......।" वह कुछ स्पष्ट कह न सकी।

"हां मेरा पुत्र ! मेरा रत्न ठीक इतना ही बड़ा था जिसे मैंने छ महीने से ही मातृहीन देखकर अपने अमूल्यधन की भांति रक्खा था। उसी के पीछे एकाकी जीवन बिताया, उसी में मग्न रह कर मैं संसार का सब सुख पाता था पर भाग्य ने उससे भी वंचित कर दिया।" मैं फिर रो पड़ा।

× × ×

उस भोले बालक के साथ रहते हुए मुझे ४ वर्ष बीत चुके थे। वह पांच वर्ष का हो चुका था—उसके साथ रहकर हमने अपने जीवन के सारे अभाव पूरे देखे। मुझे अपना खोया हुआ सुख फिर मिल गया था। मुझे पूर्ण अनुभव हो रहा था कि मैंने अपना खोया हुआ रत्न पा लिया! वह मुझे इतना प्रिय था कि मैं बिना उसके एक क्षण नहीं रह सकता था। मुझे इस बात का विचार न था कि वह एक भिखारिणी का बालक है। मैं यही समझता था कि वह मेरा ही है! मैं बिना उसके खाना नहीं खाता था, कहीं बाहर नहीं जाता था वह मुझे 'मामा' कह कर पुकारता था! मैं उसके एक बार पुकार देने पर बलिहार हो जाता था और मैं उसे 'लल्ला' कह कह कर दुलार करता था। भिखारिणी को मैं अपनी बहन मानता था। वह भी मुझे 'भय्या' कहा करती थी! हमें उसे सुखी कर पाने पर बड़ा सन्तोष था। वह भी हमें अपना एक सहायक देखकर बहुत आभारी थी। कुछ दिनों तक संसार ने उंगलियां उठाईं पर हमने उसकी परवाह न की—अन्त में संसार का कोलाहल भी शान्त होगया। परन्तु हमी लोगों के जीवन में एक हलचल मचने वाला था इसे पहले कौन जानता था?

पांचवां वर्ष लगते ही वह बालक असाध्य रोग में ग्रसित

होगया ! तीन महीने तक उसकी दशा धीरे धीरे गिरती रही। ज्यों ज्यों उसकी दशा गिरती जाती थी मैं कह नहीं सकता मुझमें क्या बीत रही थी, और उस भिखारिणी की दशा—उसकी क्या कहें। उसके अंधकारमयी जीवन का तो वह एक दीपक था जिसकी लौ धीरे धीरे धीमी पड़ रही थी—फिर उसके जीवन में अंधियाला क्यों न छा जाता। उसकी भी दशा बहुत गिर चुकी थी। मेरा यही काम था कि उन दोनों की सेवा सुश्रूषा में लगा रहता था, उसी में मस्त रहता था। किन्तु मेरी इस सेवा को उसने स्वीकार न किया और चार महीने बाद वह बुझते हुए दीपक में हमें बहला कर इस संसार से चल बसी। उसके यही अन्तिम शब्द थे—

"आशा है मेरे इस दीपक से आजीवन तुम अपनी कुटी प्रज्वलित रक्खोगे। इसे आजीवन अपने साथ रक्खो।"

पाठक ! मुझे अब भी उसका वह वाक्य याद है—खूब याद है। पर मैं उसकी आशा का पालन कुछ दिन भी न कर सका। किन्तु मैंने अपनी इच्छा से उसकी आज्ञा का उलंघन नहीं किया—विधाता ने ही ऐसा करने के लिए विवश किया।

भिखारिणी के मृत्यु के दो ही महीने बाद एक दिन उसकी दशा बहुत ही खराब हुई। रात के १ बजने का समय

था वह एक दम पुकार उठा—"मां।" मेरी आंख खुल गई, मैंने देखा—उसके हृदय की गति बड़ी तीव्र थी, चेहरा लालोलाल था—मैं घबरा उठा, उसकी ओर ग़ौर से देखने लगा। वह कुछ कहता भी था, मैंने सुनने की चेष्टा की।

"मां तुम आगईं—अब तक कहां थी, बोलो मां!" वह कहता था।

मेरा जी धड़कने लगा। मेरे कुछ समझ में न आया। मैंने अपने दोनों हाथों से उसका मुंह बन्द कर दिया और उसे पुकारने लगा—पर उसने मेरी एक न सुनी और ऊपर की ओर टकटकी बांधे देखता रहा। उसके मुंह से फिर एक आवाज निकली "मां" और फिर वह मुस्करा दिया। मैंने फिर पुकारा "बेटा.......बेटा . ...पर वह...... वह..... क्या कहूं? कैसे कहूँ कि वह मुझे अकेला छोड़ कर चला गया।

मैंने अपने हाथों उसकी शवै को खूब सजाया और शमशान भूमि में जाकर उसे अनन्त काल के लिए उस मरुभूमि में थपकियां दे देकर सुला दिया।

पाठक! उसके बाद मैं फिर वहां कैसे रहता—जिस घर का दीपक ही बुझ चुका था उसमें कैसे ठहरता। मैं वहीं

से जंगल की ओर चल पड़ा। कुछ ही कदम चला होगा कि मुझे ऐसा भास हुआ कि उसने पुकारा।

"मामा कहां जा रहे हो।" मैंने घूमकर देखा—कोई भी न था। मैं फिर चल दिया—फिर वही चिरपरिचित आवाज़ आई।

"कहां जा रहे हो।" मुझे फिर भी कोई न दिखाई दिया—मैं बड़ी देर तक उस ओर एकटक देखता रहा। एक मिट्टी का टुकड़ा उठा कर उसके कब्र पर "अनन्त की ओर" लिख कर चल दिया। फिर मुझे किसी ने न पुकारा।